शंका की एक रात

हर जीवन सुख का स्रोज रहा है। आनन्द की तलाश में है। शान्ति के लिए भटक रहा है। जीवन उत्सव बनने को आतुर है। जीवन प्रेम से संवरने के लिए उत्सुक है। जीवन परम प्रीति के साथ निबद्ध होना चाहता है। परम अस्तित्व में स्रो जाने को लयबद्ध हो रहा है और वह तभी संभव है, जबकि निशंक श्रद्धा का आँचल हमारी सुरक्षा बन जाये।

शंका आपके जीवन में प्रवेश करे, उसके पूर्व श्रद्धा को अपना जीवन साथी स्वीकार कर लेना, क्योंकि श्रद्धा की उपस्थिति में शंका का आगमन नहीं होता। श्रद्धा के होने पर शंका निर्बल हो जाती है, शक्तिहीन हो जाती है। श्रद्धा के होने पर शंका का सम्मान नहीं होता। श्रद्धा आदरणीय है, सम्मनीय, पूज्यतीय है, इसलिये सदैव ख्याल रहे, श्रद्धा के साथ बढ़ाये हुये कदम ही परमात्म तत्व को उपलब्ध कराते हैं। श्रद्धा ही सत्य का दर्शन कराती है। श्रद्धा ही शाश्वत जीवन का द्वार खोलती है।

आज तक का हमारा सम्पूर्ण जीवन शंका की गोद में गुजरा है। आज तक हमने शंका को अपना साथी बनाया है। आज तक हम शंका के साथ अपना विवाह रचाते रहे। आज तक हम शंका के स्वागत के लिये खड़े होते रहे। आज तक हमने शंका का आदर किया है। जब भी शंका ने हमारे द्वार पर दस्तक दी, हमने मुस्कराकर उसका अभिवादन किया है। जब भी शंका ने हमारे द्वार को खटखटाया हम उससे मिलने का आकुलित हो गये। यही कारण है कि हमारे जीवन में प्रभु की उपासना का भाव नहीं जागा। हमारे अन्दर प्रेम के सूख प्रकट नहीं हो सके, हमारे अन्दर परमात्म आनंद का झरना नहीं फूट सका। हमारे जीवन में विश्वास के फूल नहीं खिल सके। हमारा जीवन सत्य से कोसों दूर होता चला गया, हमारे सहयोगी भी हमसे घृणा करने लगे, क्योंकि शंका के होने पर घृणा का बीज है, शंका घृणा को पैदा करती है, शंका प्रेम को तोड़ती है, शंका स्वच्छ जीवन में कीचड़ उत्पन्न करती है, शंका उर्वरा शक्ति को बंजर कर देती है। जिस भूमि में श्रद्धा के बीज से सम्यग्ज्ञान, चारित्र की वगिया निर्मित होना थी, उस भूमि को शंका उर्वराहीन बंजर कर देती है। इसलिये ख्याल रहे अपने जीवन में

शंका को कोई स्थान न देना अन्यथा आपका फूल सा जीवन, शूल सा हो जायेगा, अन्यथा आपकी हरी-भरी बगिया सूखकर वीरान हो जायेगी, अन्यथा आपका शुभ आकाश काली घनघोर घटाओं से आच्छादित हो जायेगा, अन्यथा आपकी मौज की दुनियां में मौत का साम्राज्य छा जायेगा। आपका सुन्दर जीवन बदसूरत हो जायेगा।

इसलिये मैं आपसे एक ही बात कहना चाहता हूँ, कि शंका को अपने जीवन में कभी प्रवेश मत देना। शंका को अपना सहयोगी मत बनाना। शंका को अपने घर का पता मत देना। शंका को कभी अपना फोन नम्बर मत देना, शंका को अपने आत्मनगर का भी पता मत देना, फिर देखिये आपका जीवन कितना सुखद, सुखमय हो जाता है।

जीवन का प्रभात है श्रद्धा

आपने कभी ख्याल किया – जब सुबह होती है, प्रातःकाल होता है तो प्रकृति आनंद से भर जाती है। जीवन में एक नहीं स्फूर्ति पैदा होती है, एक नई ताजगी आ जाती है, एक नई उमंग हृदय में भर जाती है। क्षितिज पर सूर्य का आगमन होता है, तो पूर्व दिशा लालिमा से भर जाती है। लालिमा का विकीर्ण होना एक परिचय है, सूर्य के आगमन का। सूर्य का आगमन होता है, तो दशों दिशायें आलोक से भर जाती हैं, प्रकाश से भर जाती हैं। पक्षी जाग जाते हैं, मधुर कलरव प्रारंभ हो जाता है। वृक्ष झूमने लगते हैं, पत्ते-पत्ते में गान पैदा होता है, फूल मुस्कराने लगते हैं, खिलखिलाने लगते हैं। कलियाँ मुसकारती हैं, खिलने को आतुर हो जाती हैं। कितना सुहावना हो जाता है वह दृश्य। आलोकित प्रकृति अपने श्रृंगार को देख आनंदित होती है।

इसी प्रकार जब श्रद्धा का आगमन होता है तो सोती हुई चेतना जाग जाती है। आत्माकाश में श्रद्धा का आलोक फैलता है, और सम्यग्ज्ञान का पक्षी, सम्यग्ज्ञान का पुष्प हँसता है, खिलता है, मुस्कुराता है। जीवन में आनन्द की यात्रा प्रारंभ हो जाती है। जीवन उत्सव बन जाता है। आलोक बन जाता है। जीवन परमात्मा की दिव्य अनुभूतियों को पाने वे लिए उत्सुक हो जाता है। आलोक बन जाता है। जीवन में नये प्राणों का संचार होने लगता है। नूतन प्राणों का स्पदन प्रारंभ हो जाता है, अब तक की मृतप्राय जिन्दगी के प्र उदासीनता छा जाती है। कुछ नया सा करने का भाव जागता है, अपनी अनमोल शक्ति, अद्‌भुत क्षमता का परिज्ञान होता है। श्रद्धा का पक्षी आत्मकाश में विचरण करने को आतुर हो जाता है। धरती से आकाश की यात्रा प्रारंभ हो जाती है। अंधकार से प्रकाश की यात्रा

प्रारंभ हो जाती है, उदासी से उल्लास की यात्रा प्रारंभ हो जाती है। आत्मा में प्रवास का भाव जगता है, आत्मा के विलास का भाव जगता है, प्रभु के विश्वास का भाव जगता है, आत्मा के विकास का भाव जगता है। ऐसी श्रद्धा की सुबह जिस आत्मा में होती है, वह आत्मा पतित से पावनता को उपलब्ध होती है। ऐसी श्रद्धा की सुबह का दर्शन जिस आत्मा को होता है, वह आत्मा ही अपने बन्दर बैठे परमात्मा के दर्शन कर पाने में समर्थ हो पाती है।

इसलिये मै। आपसे एक ही बात कहना चाहता हूँ, कि जीवन में श्रद्धा की सुबह होना चाहिये, जीवन में श्रद्धा का प्रभात होना चाहिये।

शंका की शामः जीवन अंधकार के नाम–

यदि इतना हो सका तो आप भी उस परमात्मा तत्व का उपलब्ध हो पायेंगे, और यदि जीवन में शंका की शाम आ गई तो जीवन अंधकार में खो जायेगा, अज्ञानता में विलीन हो जायेगा, दुर्गति का आगमन हो जायेगा, जीवन की ताजगी नष्ट हो जायेगी।

क्योंकि शाम का अर्थ है, शा+म अर्थात् शांति का मरण, अशांति का जागरण। शाम के आते ही रोशनी खो जाती है। शाम के आते ही अंधकार घिरने लगता है। शाम के आते ही फूलों की मुस्कराहट भी खो जाती है। शाम के आती ही पक्षियों की चहक, पक्षियों का कलरव बंद हो जाता है। शाम के आते ही जीवन नीरस हो जाता है, जिन्दगी बोझिल होने लगती है, आँखे बंद होने लगती हैं। खुली हुई आँख जो खुला अकाश देख रही थी, प्रकृति का दर्शन हो रहा था, शाम होते ही वह दृश्य खो जायेगा, यानि प्रकृति का दर्शन हो रहा था, शाम होते ही वह दृश्य खो जायेगा, यानि प्रकृति का नजारा बंद हो जायेगा।

इसी प्रकार शंका के जीवन में आते ही अंधकार छा जाता है। शंका का आगमन श्रद्धा के नन्दनवन को उजाड़ देता है। शंका का आगमन होते ही परमात्मा के प्रति का भाव खोने लगता है। शंका का आगमन होते ही श्रद्धा की बगिया सूखने लगती है। शंका का आगन होते ही मैत्री भाव पलायन कर जाता है। शंका का आगमन होते ही गतिशील कदम रुक जाते हैं। शंका के आगमन होने पर स्वयं का परिचय भी विलीन हो जाता है। जैसे शाम के घिरते ही फूल बन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार शंका के घिरते ही आत्माकाश में खिलने वाले श्रद्धा के पुण्य बन्द हो जाते है। जैसे शाम ढलते ही पक्षी वापिस लगते हैं, उसी प्रकार शंका के आते ही श्रद्धा का पक्षी आतमाकाश से लौटकर अश्रद्धा के अंधकार से घिर जाता है। जैसे शाम के आते ही अंधकार घना होने लगता है, उसी प्रकार शंका

के आते ही अज्ञान घना होने लगता है। जैसे शाम के आते ही रात्रि घनी होने लगती है और रात्रि के घने होने पर पथ दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार शंका के आने पर अज्ञान घना हो जाता है और अज्ञान घना होने पर सुपथ दिखाई नहीं देता, सन्मार्ग दिखाई नहीं देता, मोक्षमार्ग दृष्टव्य नहीं होता।

श्रद्धा का अर्थ है मोक्षमार्ग की यात्रा पर चलने के लिए उत्सुक हो जाना। शंका का अर्थ है मोक्षमार्ग की आनंद यात्रा से मुख मोड़ लेना। श्रद्धा का अर्थ है शिवत्व को पाने की जिज्ञासा प्रदीप्त हो जाना। शंका का अर्थ है शिवत्व पाने की जिज्ञासा को निर्वासित कर देना। श्रद्धा का अर्थ है आँख का रोग विलीन हो जाना, मिट जाना, खो जाना। शंका का अर्थ है आँख का रोगी हो जाना, पीड़ित हो जाना, रोगों का घर बन जाना। श्रद्धा का अर्थ है – सत्य में जीना, शंका का अर्थ है – भ्रान्ति में जीना, संदेह में जीना।

पाप अमंगल होता है –

आज का आदमी सत्य में नहीं जीता संदेह में जीता है, और संदेह में सत्य का चेहरा दिखाई नहीं देता। संदेह में सतय भी सत्य नजर नहीं आता। यदि सत्य को संदेह की नजर लग जाये, तो यूं समझो कि सतय की अग्नि परीक्षा होना निश्चियत हैं। शंका कहो, संदेह कहो, भ्रम कहो या भ्रान्ति कहो, गलतफहमी कहो – सब एकार्थवाची हैं, इसलिये कभी भी अपने जीवन को संदेह की नजर ने लगने देना। अन्यथा सत्य की परीक्षा होगी – अग्नि परीक्षा होगी।

आपसे एक घटना कहता हूँ, राम जी के जीवन की यह घटना है। वास्तव में यह एक घटना नहीं, अपितु एक दुर्घटना है। यूँ तो दुर्घटनायें कभी-कभी अचानक घट जाया करती हैं। बड़ी से बड़ी दुर्घटनायें घट जाया करती हैं। कहीं जीप दुर्घटना, तो कहीं बस दुर्घटना, कहीं ट्रेन दुर्घटना तो कहीं क्रेन दुर्घटना, कहीं वायुयान दुर्घटना तो कहीं विमान दुर्घटना। इन सब दुर्घटनाओं का संबंध कभी सामान से तो कभी जान से होता है और इन दुर्घटनाओं में सामान चला जाये तो कुछ चला जाता है। यदि जान चली जाये तो बहुत कुछ चला जाता है अर्थात् एक भव बिगड़ जाता है। लेकिन मैं जिस घटना का जिक्र कर रहा हूँ, मैं जिस घटना को प्रस्तुत कर रहा हूँ, उस घटना का संबंध सामान से नहीं है। उस घटना का संबंध धन-दौलत, मकान से नहीं है, अपितु इस घटना का संबंध जान से नहीं, जुबान से है। इस घटना का संबंध गोली से नहीं बोलो से है।

और सच तो ये है कि जान चली जाये तो एक भव बिगड़ता है, लेकिन

जुबान चली जोय तो भव-भव बिगड़ जाते हैं। क्योंकि जुबान का जाना, सत्य का खो जाना है, सत्य से टूट जाना है, सत्य का छूट जाना है और जब सतय खो जाता है, सत्य छूट जाता है तो असत्य का प्रवेश हो जाता है। झूठ का आगमन हो जाता है और झूठ बोलना एक पाप कहलाता है। पाप अशुभ होात है, पाप अमंगल होता है अर्थात् पाप एक भाव में नहीं भव-भव में रुलाने वाला होता है, संसार में गिराने वाला होता है, संसार में भटकाने वाला होता है।

करेला और नीम चढ़ा –

आचार्य समन्त भद्रस्वामी ने अपने ग्रंथ श्री रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है–कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूप जो पाप की प्रणाली है, उससे विरक्त हो जाना ही सम्यग्चारित्र कहलाता है। यदि विरक्त न हो सके, पापों से संयुक्त होकर जिये, तो वह मिथ्याचारित्र कहलाता है और मिथ्याचारत्रि कहलाता है और मिथ्याचारित्र भव की पद्धति है, संसार की प्रणाली है। संसार में घुमाने वाली है, संसार में भ्रमण कराने वाली है, संसार की यात्रा पर ले जाने वाली है। इसलिए ध्यान रहे – यदि जान जाती है तो चली जाये, लेकिन अपनी जुबान नहीं जानी चाहिए। जुबान के जाने से जीवन नरक हो जाता है और यदि जुबान के साथ-साथ देह या शंका का मेहमान भी जुड़ जाय, तो फिर उस आदमी के जीवन की क्या दशा होगी? फिर तो यही कहा जा सकता है ''करेला और नीम चढ़ा''। यह कहावत उसके जीवन में अवश्य चरितार्थ होगी।

तो रामजी के जीवन की यह घटना है। राम ने लंका पर विजयश्री हासिल कर ली और शुभ घड़ी में प्राणों से प्रिय सीता का मिलन हो गया। रामजी के वनवास की अवधिपूर्ण हो जाने पर रामजी का लक्ष्मण और सीता के साथ जन्म नगरी अयोध्या में आगमन हुआ। दुल्हन की तरह सजी अयोध्या नगरी में राम का पदार्पधा हुआ, तो भैया भरत ने राम के चरण अपने आँसुओं से पखार दिये। नगरवासियों की आँखों से खुशी के आँसू बह निकले। सभी राम, लक्ष्मण के साथ-साथ कोमलांगी सीता को निहार रहे थे, तभी भरत ने कहा-भैया आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने अब तक राज्य का संचालन किया है, लेकिन अब मुझे राज्य संचालन के दायित्व से मुक्त करने की कृपा करें। यह राज्य आपका है, इसे आप स्वीकार कर मुझ पर अनुग्रह करें। शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त में राम का राज्याभिषेक हुआ और राम अयोध्या के राजा हो गये। राम का राज-काज सानंद चल रहा था। उनका जीवन भी प्रिया के साथ सुख से व्यतीत हो रहा था।

जीवन की शुद्धि के लिए तन-मन की शुद्धि आवश्यक –

एक दिन की बात, सुबह का वक्त था। शीतल समीर चारों-ओर प्रवाहित हो रही थी, चारों-ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। लोक में प्रचलन है, कि एक धोबी अपनी पत्नि को अपने घर में प्रवेश देने से मना कर रहा था। उसकी पत्नि धोबी के सामने गिड़गिड़ा रही थी, रो रही थी। लेकिन धोबी को उसकी दीनता पर जरा भी दया न थी। तभी धोबी ने कहा– मैं तुझे अपने घर में अपने पास नहीं रख सकता। मै। राम थोड़े ही हूँ, जो अपनी सीता को लंका में रहने के बाद भी अपनी रानी बनाकर महल में रखे हुये हैं। धोबी के ये शब्द पड़ौस की स्त्रियों ने सुन लिये और यह बात कानों-कान पूरे नगर में आग की तरह फैल गई।

धोबी ने आज तक दूसरों के कपड़े तो धोए थे, दूसरों के वस्त्रों का मैल तो धोया था, लेकिन कभी अपने मनरूपी कपड़े को न धो सका। कभी अपने मन रूपी वस्त्र का मैल न निकाल सका। धोबी ने कपड़े तो स्वच्छ किय थे, लेकिन सभी अपने मन को स्वच्छ न कर सका। धोबी ने कपड़ो को साबुन, डिटर्जेंट तो लगाया था, लेकिन कभी अपने मन को साबुन, डिटर्जेंट से नहीं धोया। धोबी ने कपड़ो का तो हर दाग साफ किया था, मिटाया था, लेकिन अपने मनरूपी कपड़े का कोई भी दाग साफ न कर सका। धोबी ने आज तक वस्त्रों को तो निचोड़ा था, लेकिन कभी अपने मनरूपी वस्त्र को न निचोड़ सका। धोबी ने दूसरों के वस्त्र तो सुखाये थे, लेकिन अपने मनरूपी वस्त्र को न सुखा सका, और मैं तो कहता हूँ वस्त्र गंदे हैं, रहे आयें, कोई बात नहीं, उसमें आपका कुछ न बिगड़ेगा, लेकिन यदि मन गंदा रहा, मन मलिन रहा, मन मैला रहा तो ध्यान रहे आपका सब कुछ बिगड़ जायेगा।

मन क्रोध से गंदा है, मन मान से गंदा है, मन मायाचारी, छल-कपट, धोखेबाजी से गंदा है, मन मान से गंदा है, मन मायाचारी, छल-कपट, धोखेबाजी से गंदा है, मन लोभ के कारण गंदा है, मन ईर्ष्या के कारण गंदा है, मन पाँच पापों से गंदा है, मन शंका में गंदा है, मन चाह में गंदा है, और जब तक मनरूपी वस्त्र को धोकर इन सब गन्दगी को निचोड़कर अलग कर सुखा न लिया जाय, तब तक मन की शुद्धता नहीं तो सकती और जब तक मन की शुद्धता न होगी, तब तक मन की शुद्धता नहीं हो सकती और जब तक मन की शुद्धता न होगी, तब तक ध्यान रहे तन की शुद्धता नहीं हो सकती ओर जब तक मन की शुद्धता न होगी, तब तक ध्यान रहे तन की शुद्धता कार्यकारी नहीं। और जब तक तन-मन की शुद्धता नहीं होगी, तब तक आत्मा से श्रेष्ठ आचरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब तक आत्मा श्रेष्ठ आचरण के लिए राजी न होगा,

तब तक श्रद्धागुण का आविर्भाव नहीं हो सकता। जब तक श्रद्धागुण का आगमन न होगा, तब तक ज्ञान, चरित्र का बाग नहीं लग सका। जब तक ज्ञान चरित्र का बाग न होगा, तब तक ज्ञान, चरित्र का बाग नहीं आ सकती। इसलिए ख्याल रहे आत्मा के अन्दर श्रेष्ठता उत्पन्न हो, उसके लिए जीवन की शुद्धि करो। जीवन की शुद्धि के लिए तन के साथ-साथ मन की शुद्धता नितांत आवश्यक है।

आदमी या चालाक आदमी: निर्णय आपका–

और मजे की बात तो ये है, कि कहने को तो आज का आदमी बहुत होशियार, बहुत चतुर हो गया है। वास्तव में आज का आदमी होशियार नहीं हुआ, वास्तव में आज का आदमी चतुर भी नहीं हुआ, अपितु आज का आदमी चालाक हो गया है। चालाक आदमी अपना बदन तो साफ करता है, चालाक आदमी आपना वसन तो साफ करता है, लेकिन कभी अपना मन साफ नहीं करता। कभी अपना वतन साफ नहीं करता, अर्थात् आत्मा की श्रेष्ठता तो चाहता है, लेकिन मन की श्रेष्ठता नहीं चाहता। मन को विषय, कषायों से स्नान कराता है। मन को ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, मान, माया के गंदे जल से धोता है। मन को शंका के जल से स्वच्छ करना चाहता है। यदि आदमी कीचड़ से अपना शरीर, अपनी देह और अपने वस्त्रों को साफ, स्वच्द करने का प्रयास करे, तो उससे बड़ा अज्ञानी भी, उससे बड़ा मूर्ख व्यक्ति भी कोई दूसरा न होगा। क्योंकि देह गंदे कीचड़ देह गंदे कीचड़ आदि से स्वच्द नहीं होती, अपितु उसके लिए शुद्ध, साफ स्वच्द जल की आवश्कता होती है।

लेकिन तथाकथित मुमुक्ष, पंडित, आत्मा की श्रेष्ठता की बात तो करने देखे जाते हैं, आत्मा को परमात्मा की चादर तो ओढ़ाते हैं, लेकिन कभी अपने मन की श्रेष्ठता की चर्चा नहीं करते। मन विषय कषायों के कीचड़ से गंदा हो रहा है, मलीन हो रहा है, फिर भी आत्मा की श्रेष्ठता की बात करना, आत्मा की शुद्धता में रमण करना नितांत पागलपन है। आत्मा को परमात्मा की चादर ओढ़ाई नहीं जाती, अपितु आत्मा को श्रेष्ठ आचरण की चादर प्रदार कीजिए। तप, त्याग, साधना वे परिधान ही आत्मा को श्रेष्ठ बनाते हैं, सुन्दर बनाते हैं।

निर्ग्रंथ का रूप ही परमात्मा की दिव्यता को उपलब्ध कराता है। इसलिए मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ कि आप आदमी बनने का प्रयास करें, चालाक आदमी बनने की जुगत न लगायें।

चालाक आदमी इस दुनिया से कभी मुक्त नहीं हो सकता। उसके लिए आदमी बनने की जरूरत है। आदमी का अर्थ है– आ+द+मी अर्थात् "आ से

आचरण'' जो आत्मा को पाने के लिए, आत्मा को उपलब्ध होने के लिए आचरण में जीने के लिए राजी है, आचरण में जीने के लिए तैयार है। आचरण की यात्रा पर निकलना चाहता है, आचरण के द्वार खोलना चाहता है। ''द यानि दमन'' – जो अपनी इन्द्रियों का दमन करने का इच्छुक है। विषय कषायों की आकांक्षा से रहित है। मन को स्वच्छ करने के लिए तप, त्याग, साधना के मार्ग पर चलने को आतुर है। ''मी का अर्थ है मीत''–अपने अन्दर छुपा हुआ अव्यक्त रूप परमात्मा ही मेरा मीत है, उसी से मेरी प्रीत है। वही मेरी जिंदगी का अनबूझ संगीत है। उसको पा लेना ही जीवन की जत है, ऐसा संकल्प जगा लेना।

तो महानुभाव आप आदमी बनें, चालाक आदमी न बनें। क्योंकि आदमी अपने प्रभु, अपने परमात्मा को पाने के लिए अपने मीत को पाने के लिए संकल्पवान होता हुआ, इन्द्रियों और मन को दमन कर आचरण के द्वार में प्रवेश करता है। और चालाक आदमी इन्द्रियों को और मन को तृप्त करने का प्रयास करता है। आचरण से दूर कोरी पांडित्य की भावना से बहंकार के द्वार में प्रवेश कर संसार का ही सृजन करता है।

शंका शांति की घातक, अशांति की उपासक–

तो धोबी ने कहा – मैं वह राम नहीं जो रावण के पास में रही सीता को राम की तरह अपने पार रख लूँ। धोबी का मन शंका के कीचड़ से लिप्त हो गया, धाबी का मन शंका के जहर से भर गया। शंका वास्तव में किसी जहर से कम नहीं होती, शंका वास्तव में किसी विष से कम नहीं होती। क्योंकि जैसे जहर को खा लेने पर जिंदगी खो जाती है, वैसे ही शंका का जहर श्रद्धा को मार देता है। जैसे जहर से जीवन मिटता है, उसी प्रकार शंका से श्रद्धा मिटती है। जैसे जहर खा लेने पर आदमी तड़प-तड़पकर, जलभुनकर श्रद्धा को तोड़ देता है। जैसे जहर का सेवन मौत का आलिंगन है, उसी प्रकार शंका सेवन मिथयात्व का आलिंगन है।

धोबी ने यह बात अपनी पत्नि से कही थी, लेकिन कानों-कान उसके शक्ति मन से निकले हुये शब्द पूरे नगर में बादलों की तरह छा गये और हर आदमी के कर्णरूपी घर में खूब गड़गड़ाहट के साथ बरसे। जब यह शब्द राम के कानों में पहुँचे, जब यह शब्द राम को सुनाई दिये, तो राम के तो पैरों तले से जमी खिसक गई। राम के जीवन पर वज्रपात सा हो गया। राम ने अपनी साता के विषय में ऐसा नहीं सोचा था। राम जानते थे सीता पतिव्रता है, अपने शील में दृढ़ हैं। लेकिन धोबी के मन से निकले शक्ति शब्द राम के विवेक पर प्रहार

करने लगे। शंका के जुबान रूपी बादलों ने सत्य के आसमान को आच्छादित कर दिया। शंका के शब्द, शंका के बोल राम की बुद्धि पर आक्रमण कर चके थे। राम कुछ समय के लिए एकदम मौन हो गये। लक्ष्मण ने कहा – भैया आज्ञा दो, हम अपनी माँ सीता के विषय में ऐसे शब्द नहीं सुन सकते। मैं अभी उस धोबी को यमराज के घर पहुँचा दूँगा, जिने सीता माता के प्रति इतने निकृष्ट शब्दों का प्रयोगी किया है। हनुमान ने अपनी गदा संभाल ली और राम के संकेत की प्रतीक्षा करने लगे, लेकिन राम फिर भी मौन ीि। राम का मौन लक्ष्मण की बैचेनी का कारण बना थ। एक शंका के शब्द ने इन महापुरूपरूषों की शान्ति को छीन लिया। ''शंका शांति की घातक, अशांति की उपासक होती है।'' सभी की दृष्टि राम की ओर थी। राम ने अपना मौन तोड़ा। लक्ष्मण ने सोचा, भैया का संकेत धोबी को दण्ड नहीं देना है, दण्ड तो सीता के लिए दिया जाना है। लक्ष्मण ने सुना तो चौंक जाते हैं। हनुमान ने सुना तो मजाक सा लगा।

पावन पुनीत जिनधर्म को मत छोड़ देना –

पद्मपुराण में उल्लेख है कि राम ने तुरन्त ही अपने प्रधान सेनापति कृतांतवक्र का बुलाया और आदेश दिया कि सीता को किसी गहन अटवी, गहन वन में छोड़ दिया जाये। सीता ने तीर्थवंदना की भावना प्रगट की थी, अत: तीर्थ वंदना के बहाने जंगल में छोड़ दिया जाये। लक्ष्मण और हनुमान ने सुना तो उनकी आँखों से आँसू बह निकले। कृतान्तवक्र की आँखों से आँसुओं की अविररल ध ाारा प्रवाहित हो गई सभी ने राम से मिलकर प्रार्थना की – प्रभु! सीता माता के साथ ऐसा अन्ययाय मत कीजिए। दूसरों के कहने पर सीता सती पर ऐसी शंका करना आप जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम को शोभा नहीं देता। नाना प्रकार से समझाने पर भी राम ने अपने सेनापति कृतांतवक्र को आदेश दिया कि इसी समय सीता को जंगल की गहन अटवी में छोड़ दिया जाये। सेनापति कृतांवक्र स्वामीभक्त था। आँसू बहाता हुआ, आज्ञा को शिरोधार्य करता हुआ, सीता माता के रनवास में जाकर तीर्थ वंदना हेतु चलने का आग्रह करता है। सीता खुशी-खुशी तीर्थ वंदना के भाव से भरी हुई कृतांतवक्र के साथ रथ में सवार हो जाती है। कृतांतवक्र आँखों से आँसू बहाता हुआ रथ पर सवार हो गहन जंगल की ओर ले जाता है। नगर से काफी दूर निकल जाने के बाद घनघोर जंगल में जाकर रथ को रोक देता है। सीता पूछती है – अरे यहाँ इस जंगल में रथ को क्यों रोक दिया? कृतांतवक्र सीता माता के चरणों में गिर पड़ता है। उनसे अपने इस कार्य के लिए बार-बार क्षमा के शंका भरे वचनों को सुनकर आपके लिए जंगल में

छोड़ने को कठोर निर्णय लिया है, अत: तीथयात्रा के बहाने हम आपको इस जंगल में छोड़ने आये हैं।

सीता ने सुना तो आँखों में आँसू भर आये। सीता ने कभी नहीं सोचा था, कि राम शंका के पक्षधर हो जायेंगे और मुझ गर्भवती सीता के साथ ऐसा कठोर निणर्य भी ले लेंगे। अब इस निर्जन वन में कैसे रह पाऊँगी? अब इस भयंकर पशुओं, जानवरों से सहित जंगल मं अपनी और अपने गर्भ मे पल रहे शिशु की रक्षा कैसे कर पाऊँगी? हे भगवान्! ऐसा कौन सा पाप कार्य मैंने किया था, जिसका फल इस प्रकार मुझे लि रहा है? कृतांतवक्र ने कहा-माता, अब हम वापिस नहीं जाना चाहते, हम आपके ही पास रहकर आपकी सेवा करेंगे, हम आपकी रक्षा मं अपने प्राण भी दे सकते हैं। सीता ने कहा–नहीं कृतांतवक्र जो कर्म हमने किया है, उसका फल मुझे ही भोगना है। इसमें तुम्हारी या राम की क्या गलती? राम ने जो आदेश हमारे लिए तुम्हें दिया, उसका मै। पालन करूँगी? तुम्हारा रुकना भी यहाँ ठीक नहीं। न जाने लोग क्या-क्या सोचने लगें। जब हमारे राम ही शंका में विचलित हो सकते है। तो अन्य संसारी प्राणियों का तो कहना ही क्या?

कृतांतवक्र ने कहा-माता! तुम ऐसे घनघोर जंगल में कैसे रह पाओगी? सीता ने कहा-हमारा परमात्मा, हमारी श्रद्धा, हमारा शीलव्रत हमारी रक्षा करेगा। जाओ कृतांतवक्र अब और रुकना ठीक नहीं, लेकिन एक बात राम से जरुर कहते जाना, हमारी एक बात राम के चरणों में जरूर निवेदित कर देना कि ''जैसे दूसरों के कहने पर सीता को छोड़ दिया, सीता का परित्याग कर देना कि ''जैसे दूसरों के कहने पर सीता को छोड़ दिया, सीता का परित्याग कर दिया, ऐसे ही दूसरों के कहने पर पावन-पुनीत जिनधर्म को मत छोड़ देना।'' कृतांतवक्र ने सीता का यह समाचार सुना तो अश्रुपूरति हो गया और सीता के कहने पर वह वापिस अयोध्या नगर को चल गया।

तो शादी क्यों की थी?

यहा है आर्य संस्कृति। यह है आर्य स्त्री का आचरण। यह है पतिव्रता स्त्री का आचरण। यहा है धर्म पत्नी की सार्थकता। धन्य है सीता और सीता जैसी पतिव्रता नारी। धन्य है सीता और सीता जैसी धर्मपत्नी। सीता ने धर्मपत्नी होने का कर्त्तव्य भी बखूबी निभाया। भले ही मर्यादापुरूषोत्तम राम अपनी पत्नि सीता के प्रति अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये, लेकिन भारतीय धर्मपत्नी ने अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ा। राम ने अपनी सीता को छोड़ दिया, लेकिन सीता ने राम के

प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं छोड़ा। धर्मपत्नी का अर्थ ही इतना है, जो पति के कर्त्तव्य विमुख होने पर उन्हें धर्म के मार्ग में स्थिर करने का साहस जुटाये। पति को धर्म मार्ग की शिक्षा दे। अपने प्रेम से, अपने प्यार से, अपने स्नेह से धर्म के प्रति जागरूक कर दे, धर्म से विमुख न होने दे। सीता ने धर्मपत्नी होना चरितार्थ कर दिया। राम के छोड़ देने पर भी सीता ने अपने राम को यही शिक्षा दी, अपने राम को इतना ही जागरूक किया कि हे राम! दूसरों के कहने पर पावन जिनध र्म को मज छोड़ देना। सीता ने यह नहीं कहा–कि राम ने मेरे साथ अन्याय किया, धोखा किया, छल किया। राम के प्रति सीता ने अपना वही आदर भाव रखा। यदि वर्तमान में पति थोड़ा कुछ कह दे तो पत्नी अपने पति को भी बुरा कहने में न चूकेगी। सीता ने राम को धर्ममार्ग पर ही चलने की सलाह दी।

परन्तु आज की नारियाँ, आज की स्त्रियाँ पत्नी तो बन जाती हैं, लेकिन धर्मपत्नी की भूमिका अदा नहीं कर पातीं। आज की नारियाँ अपने पति को ध र्म मार्ग पर कम, संसार के मार्ग पर बढ़ने की अधिक शिक्षा देती हैं। यदि बेचारा पति धर्ममार्ग पर भी चल रहा होगा, तो उसे धर्म के मार्ग से विमुख कर देना अपना कर्त्तव्य समझ लेती हैं। ''जो पति के धर्म की बनायें चटनी, उसे कहते हैं, धर्मपत्नि''। यह वर्तमान की नारियों पर लागू होता है, वर्तमान की धर्मपत्नियों पर लागू होता है, क्योंकि पति का नियम है पूजन करने का, देव-दर्शन करने का, गुरु-भक्ति का, शास्त्र स्वाध्याय का, संयम पालन करने का, तो पत्नी कहती है नहीं, मंदिर बाद में, पहले शॉपिंग करने चलना है। पति नहीं भी जाना चाहे तो उसे मायके जाने की धमकी दे देती है, उससे रूठ जाती है। अंत में पति महोदय को मंदिर को छोड़ शॉपिंग को राजी होना पड़ता है। पति मंदिर जाना चाहता है, पत्नी चूड़िया खरीदने जाना चाहती है। पति मंदिर जाना चाहता है, तो पत्नी फिल्म जाना चाहती है। पति मंदिर जाना चाहता है पत्नी अपनी सहेली के घर जाना चाहती है। ऐसे समय पत्नी, पति को ताने देती है–बड़े पुजारी बन गये हो? बड़े धर्मात्मा बन गये हो? हमारा कोई ख्याल ही नहीं है? हम मरें या जियें, तुम्हें इसकी क्या चिंता? हमारे साथ ऐसा ही करना था, तो शादी क्यों की थी? आदि-आदि ऐसी बातें कहेंगी, कि पति महोदय को पत्नी पर दया आ जायेगी और धर्ममार्ग को छोड़कर कर्ममार्ग पर लग जायेंगे। ख्याल रहे ऐसी पत्नी सिर्फ एक भोग्या पत्नी तो बन सकती है, लेकिन धर्मपत्नी नहीं बन सकती। राम ने सीता के आचरण पर शंका कर नी, परप्तु सीता ने राम के आचरण पर कभी शंका नहीं की। सीता के न केवल हृदय में ही राम थे अपितु सीता के रोम-रोम में राम थे।

राम के अन्दर शंका का पक्षपाती वायरस प्रवेश कर गया और उन्होंने सीता का परित्याग कर दिया। सीता को वन में जाने की अनुमति, आदेश प्रदान कर दिया। शंका के आते ही विवेक मर जाता है, बुद्धि पलायन कर जाती है। शंका के आते ही श्रद्धा की बगिया मुरझाा जाती है। शंका के आते ही प्रेम का बंध न टूट जाता है, प्रेम का बंधन बिखर जाता है।

धर्मपत्नी–

इसलिये मैं आप सभी से यही कहना चाहता हूँ, कि सीता का आदर्श प्रस्तुत करें। सीता की श्रद्धा अपने प्राणों में भी जगायें जिससे आप आदर्शवान कहला सकें। यदि आपका पति आपके विराध में खड़ा हो जाये, यदि आपका पति आपसे रूठ जाये, यदि आपका पति आपके प्रति बेरुखी से भर जाये, यदि आपका पति आपसे बोलना भी बंद कर दे, यदि आपका पति आपके अनुरूप न भी हो, यदि आपका पति आपसे नफरत करने लगे, तो भी ध्यान रहे – आपको सीता बनकर उनके सामने आदर्श स्थापित करना होगा। सीता का चरित्र आपने अंदर भ्झी जगाना होगा। सीता की तरह एक धर्मपत्नी की भूमिका अदा करना होगी, अर्थात् अपने पति को फिर भी धर्म की शिक्षा, धर्म के सूत्र दे देना। उनसे तुम भी यही कह देना, हम कष्ट सहन कर लेंगे, लेकिन आप धर्म के प्रति मत रूठ जाना। आपको हमसे नफरत है कर लो, लेकिन प्यारे-प्यारे धर्म से नफरत मत करना। आपको हमसे विरोध है, बना रहे – कोई बात नहीं चल जायेगा, लेकिन आप धर्म से विरोध मत करना। आपकी हमारे प्रति बेरुखी है, काई बात नहीं, चल जायेगी, लेकिन अपने धर्म से विमुख मत होना। और ध्यान रहे जो अपने पति को धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा देने में सफल रहीं, वे ध र्मपत्नियाँ हैं। उनका पति ऐसी पत्नी से शायद कभी नफरत नहीं कर सकता, विरोध में खड़ा नहीं हो सकता। यदि इतना भाव हृदय में जग सका तो निश्चित ही उन पत्नियों के अन्दर सीता सा समर्पण और अंजना सी पति भक्ति होगी। परमात्मा पर आस्था ओर कर्म पर विश्वास होगा।

इसका अर्थ यह नहीं कि सिर्फ पत्नी को ही धर्मपत्नी का पाठ अदा करना होगा, सिर्फ पत्नी को ही धर्मपत्नी की भूमिका में आना होगा, सिर्फ पत्नी को ही धर्मपत्नी बनकर जीवन निर्वाह करना होगा, अपितु इसका अर्थ सिर्फ इतना है कि – पति भी धर्म पति होने का भाव रखे। पति भी धर्मपति बनकर अपनी पत्नी को धर्ममार्ग की शिक्षा दे। यदि पत्नी धर्म से हीन हैं, तो उसे धर्म करने की प्रेरणा दे।

शायद आपको पता हो – सती अंजना को भी अपने पति की शंका का दु:ख सहना पड़ा था। यानि पति के अन्दर शंका का भाव आ जाने से पवनंजय ने सती अंजना को २२ वर्ष तक अपने प्रेम के बोल से वंचित रखा था। २२ वर्ष तक अंजना ने पति वियोग के क्षण बिताये थे। इससे अंजना का पति के प्रति नि:स्वार्थ भक्ति निष्ठा का परिचय मिलता है। अंजना के मन में भी नाना प्रकार की शंकाये उठ सकती थीं, लेकिन यह आर्य नारी का चरित्र है, कि सीता और अंजना जैसी नारियाँ अपने पति से वियोग के क्षणों में उनके प्रति शंका भाव से नहीं भरीं, उनके प्रति ग्लानि का भाव नहीं आया।

शंका में जीना सुखद जीवन की मृतयु है –

यूँ तो अंजना ने पति वियोग के २२ वर्ष सहन किये। पति के वियोग में भी उसने अपने को, अपने भाग्य को ही दोष दिया। अंजना जानती है, अंजना को पता है कि मेरा कोई दोष नहीं, मेरी कोई गलती नहीं, लेकिन पवनंजय अपने अपमान होने के प्रति शंका से भरे हैं। ख्याल रहे जहाँ शंका होती है, वहाँ अपमान भी हो तो कोई बड़ी बात नहीं। पवनंजय सिर्फ शंका में हैं, कि अंजना ने मेरा अपमान किया है, जबकि अंजना ने उनका अपमान नहीं किया। अपमान करने का भाव भी अंजना के मन में नहीं आया। अंजना की चाहत तो फिर भी पवनंजय के प्रति है। लेकिन पवनंजय शंका होती है, वहाँ अपमान स्वयं के द्वारा स्वयं का ही किया जाता है। ''शंका से बड़ा कोई दूसरा अपमान नहीं''। शंका स्वयं के द्वारा पैदा होती है, जो स्वयं के अपमान का हेतु बनती है। जो स्वयं को सुख से दूर ले जाती है। शंकित मन कभी सम्मान के शिखर को उपलब्ध नहीं होते।

और सच तो ये है कि ''शंका में जीना, सुखद जीवन की मृत्यु है'' – यह सूत्र छोटा है, लेकिन अर्थ गहरा है। शंका सुख का भोग करती है, दु:ख का विसर्जन करती है। शंका सुख को खा जाती है, दु:ख को उगलती है। शंका उन्नति को पचाती है, अवनति का वमन करती है। शंका सुख को मिटाती है, दु:ख को उत्पन्न करती है। शंका में संयोग नहीं, सिर्फ वियोग होता है। शंका की अग्नि सुख को जलाकर खाक कर देती है। इसलिये शंका में जीना, सुखद जीवन की मृत्यु है। पवनंजय शंका में हैं, शंका की चादर ओढ़े हे। शंका की डोर से बँधे हैं, इसलिये अंजना के प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सके। अपनी ही पित्न से मिलने का भाव मर गया है। पवनंजय चाहते तो 22 वर्ष तक सुखद जीवन जी लेते। अंजना का प्रेम पाकर अपने जीवन को सुखमय बना लेते। लेकिन शंका के भाव ने अंजना से अलग रखा। दु:खमय जीवन जीने के लिए विवश कर

दिया। यह 22 वर्ष का वियोग सिर्फ अंजना ने सहन किया हो, सो बात नहीं है। यह 22 वष का वियोग अंजना के पल्ले ही आया हो सो भी बात नहीं है, यह 22 वर्ष का वियोग पवनंजय ने भी सहन किया है। 22 का अर्थ है – 2 और 2, यानि दानों ने। पवनंजय ने भी 22 वर्ष का वियोग सहन किया है। अन्तर इतना है अंजना श्रद्धा में, विश्वास में वियोग सहन करती रही और पवनंजय शका में, अविश्वास में, घृणा में वियोग को सहन करते रहे। लेकिन यह वियोग दोनों ने ही सहन किया।

धर्मपत्नी और धर्मपति होने का अर्थ ही इतना है, कि एक के दु:ख में दूसरा भी उसे अपना दु:ख समझे। एक का दु:ख दूसरे का दु:ख बन जाये। एक पीड़ा दूसरे की पीड़ा बन जाये। दूसरे का सुख एक का सुख बन जाये, सुख में सुखी, दुख में दुखी। इसलिये पति बनना सरन है, लेकिन धर्ममति बनना बहुत कठिन बात है। पति होने का अर्थ है–वासना की पूर्ति, पत्नी होने का अर्थ है–वासना की पूर्ति। धर्मपति और धर्मपत्नी होने का अर्थ है – धर्म की राह पर चलने के लिए सहयोगी साथी बनकर जीना, धर्ममार्ग पर आने वाली कठिनाईयों को मिलकर समाप्त कर देना, और एक-दूसरे के सुखद जीवन के लिए कामना करना। इसलिये आप सभी धर्मपत्नी और धर्मपति होने की धारा में जुड़े। एक-दूसरे के लिए धर्ममार्ग में सहयोगी बनें। शंका को कभी भी अपने जीवन में प्रवेश मत देना, अन्यथा स्वर्ग सा सुखमय जीवन, नरक की क्रीड़ाभूमि बन जायेगा।

प्रेम की विजय, शंका की पराजय–

सीता के हृदय में ही राम नहीं बसे थे, अपितु रोम-रोम में राम का वास था। सीता ने अपने पति के आदेश से जंगल में रहना स्वीकार कर लिया सीता गर्भवती थी, अत: योग्य समय पर सीता ने दो पुण्यशाली पुत्रों का प्रसव किया। धीरे-धीरे दोनों ही तेजस्वी पुत्र क्षुल्लक सिद्धार्थ के पास रहकर शास्त्र एवं शस्त्र ज्ञान में पारंगत हो गये। एक दिन नारद के द्वारा ''राम-लक्ष्मण जैसे हो!'' कहे जाने पर दोनों पुत्रों ने अपनी माता सीता से उनके विषय में जानना चाहा। हठ करने पर सीता ने सारा वृतांत अपने पुत्रों को सुना दिया। जैसे ही लवणकुमार और मदनांकुश ने राम के द्वारा अपनी माता सीता पर किये गये अनुचित व्यवहार को सुना, तो सुना, तो युद्ध करने का विचार मन में कर लिया और शीघ्र ही अपनी सेना की सुसज्जित कर युद्ध भूमि की ओर चल पड़े।

उधर राम-लक्ष्मण ने अपने शत्रु को आते सुना तो उनकी सेना भी युद्ध

स्थल में जा डटी। दोनों ही सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ और लव-कुश ने राम की सेना के मुख्य सेनापति को बन्दी बना लिया। तब हनुमान भी आगे आये। लव-कुश ने उन्हें भी बन्दी बना लिया। शत्रु पक्ष को शक्तिशाली जान राम-लक्ष्मण युद्ध स्थल मे उपस्थित हुये। राम-लक्ष्मण ओर उनके पुत्र का युद्ध, आकाश से देवता और नारद भी देख रहे थे। राम-लक्ष्मण के समस्त शस्त्रों का प्रहार लव-कुश काट दिया करते थे। राम-लक्ष्मण युद्ध करते-करते थक गये, लेकिन अपने शत्रु पर विजय हासिल न कर सके। पिता-पुत्र के बीच काफी समय तक यह रोमांचक युद्ध चलता रहा।

लस-कुश के साथ सीता का प्रेम है, राम के साथ धोबी की शंका है। इसलिए राम का शौर्य फीका पड़ रहा है, क्योंकि शंका शौर्य को निर्बल बनाती है। शत्रु को अतिशय शक्तिशाली जान लक्ष्मण ने अपना चक्र चला दिया, लेकिन वह चक्र भी उनकी परिक्रमा लगाकर वापिस आ गया। तब राम-लक्ष्मण को अपने ही बलदेव व नारायण होने पर संदेह होने लगा। वे सोचने लगे कि, क्या हम बलदेव हैं या इनमें कोई बलदेव है? लक्ष्मण विचारते हैं हम ही नारायण हैं या इनमें से कोई नारायण हैं?

नारद सब देख रहे थे। वे तुरन्त ही नीचे आते हैं और राम-लक्ष्मण को लव-कुश के विषय में वास्तविकता का परिचय देते हैं। लव-कुश को पता था, कि राम-लक्ष्मण हमारे पिता-चाचा हैं। अत: उन्होंने अपने शस्त्र वार की दुष्टि से नही चलाये, अपितु राम द्वारा चलाये गये शस्त्रों को निष्क्रिय कर दिया। जैसे ही राम को पता चला, राम ने शस्त्र नीचे डाल दिये। युद्ध बन्द की घोषणा कर दी गई। पिता-पुत्र का मधुर मिलन हुआ। देवता नृत्य करने लगे।

सीता की आँखे अश्रपूरित हो गई लव-कुश अपने पिता के साथ राजसभा में उपस्थित हुये। सीता भी वहाँ पहुँच जाती है। लक्ष्मण और हनुमान ने सीता को देखा तो सीता की चरण वन्दना करने का भाव जाग उठा। सीता को देख उनके हृदय कमल खिल गये। तभी राम ने सीता को देखा और कहा – बिना परीक्षा दिये, इस लगर में और इस राजसभा में आने की धृष्टता क्यों की? लक्ष्मण ने सुना, तो ऐसा लगा जैसे वर्जपात हो गया हो। सीता ने कहा – आप हमारे शील की जो भी परीक्षा लेंगे, हम देने को तेयार हैं। अपकी आज्ञा मुझ शीलवती के लिए शिरोधार्य है। तब राम ने कहा – सीते! बिना अग्नि-परीक्षा के तुम इस महल में प्रवेश नहीं कर सकती। सीता ने अग्नि-परीक्षा देना स्वीकार कर लिया।

राम की आज्ञा से अग्नि-कुण्ड तैयार किया गया। नगर में चारों–ओर चर्चा है, सीता अग्नि-परीक्षा से गुजरेंगी। निश्चित समय पर सभी लोग अग्नि-कुण्ड

के निकट हैं। कुण्ड में अग्नि धधक ही नहीं रही, अपितु विशाल उठती हुई लपटें जैसे सम्पूर्ण आकाश का भक्षण करना चाहती हैं, जैसे सम्पूर्ण आकाश को जलाकर खा जाने को आतुर हैं। कोमलांगी सीता सफेद परिधान में लिपटी हुई, अपने शील की परीक्षा देने के लिए तैयार है। चारों-ओर जनसमूह इकट्ठा है, सभी शोक मग्न हैं। हनुमान, राम से बात भी नहीं करना चाहते, राम की ओर देखना भी जैसे पसंद नहीं, एक ओर एकान्त में खड़े हैं। राम भी चिंतित से नजर आ रहे हें। राम, लक्ष्मण से कहते हैं–लक्ष्मण! सीता अति कोमल है। यह अग्नि को देखती है, तो आँखों में आँसू आ जाते हैं। कैसे उठती हुई ज्वालाओं का ताप सहन कर सकेगी? लक्ष्मण कहते है। – जितने आँसू आपने सीता माता को दिये हैं, यह अग्नि उतने आँसू न दे पायेगी भैया। आपका हृदय तो पत्थर हो गया है। आपने दूसरों के कहने पर जो किया है, आपकी मर्यादा धूमिल करने वाला है। राम कहते हैं लक्ष्मण! सीता अग्नि का ताप सहन न कर सकेगी।

अरिहन्त शरण ही सच्ची शरण –

इधर सीत अपने प्रभु के ध्यान में संलग्न हैं। अर्हंत परमात्मा के ध्यान में डूबी है। णमोकार मंत्र ही एक सहायक है। उसी पर दृढ़ श्रद्धा है, कोई शंका नहीं। अपने प्रभु का ध्यान करते हुए सीता अग्नि-कुण्ड की ओर अपने कदम बढ़ाने लगी। जैसे-जैसे कदम बढ़ते जा रहे हैं, राम की धड़कन भी बढ़ती जा रही हैं। राम के हृदय में कोलाहत होने लगा, उथल-पुथल होने लगी। सीता फिर भी अपने कदम बढ़ाती जा रही है। सीता प्रसन्न है, जैसे कोई अलौकिक निधि प्राप्त हो गई हो। सीता प्रभु के ध्यान में इतनी डूबी कि वहाँ से निकलने का भी ख्याल न रहा। सीता प्रभु को पाकर कुछ समय के लिए राम को भूल गई। जो आनन्द राम को भूलने में आया, वह कभी न आया था। आज सीता अपने आतमराम, अपने प्रीाु अर्हंत के ध्यान में सब कुछ भूल गई। सीता कहती है – हे प्रभो! तू ही मेरा रक्षक है, तू ही मेरा सहारा है, तू ही मेरा सर्वस्व है, तुम्हारे सिवा अब मेरा कोई भी नहीं हमारे स्वामी, हमारे पति राम भी नहीं। अब आप ही मेरे पति हो, आप ही मेरे पिता हो, आप ही मेरे बन्धु हो, आप ही मेरे सखा हो, आप ही मेरे देवता हो, आप ही मेरे बन्धु हो, आप ही मेरे सखा हो, आप ही मेरे देवता हो, आप ही मेरा जीवन हो, आप ही मेरे प्राण हो, आप ही मेरे स्वामी हो। यह परीक्षा मेरी नहीं, आपकी। है। हे प्रभो! रक्षा करना, कहीं जिनधर्म की अप्रभावना न हो। कहीं शीलव्रत का उपहास न हो। मैं अब आपकी शरण में हूँ। आप ही मेरे शरण दाता हो। अब मैं राम की शरण में नहीं, आपकी शरण में हूँ।

उधर सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है। अवधिज्ञान से जानकर वह एक देव को रक्षा हेतु करता है। सीता अग्नि-कुण्ड की ओर बढ़ चली, अपने अर्हंत परमात्मा का ध्यान करती हुई। णमोकार मंत्र का स्मरण करती हुई अग्निकुण्ड में प्रवेश कर जाती है। देव तुरन्त ही अग्निकुण्ड को जल का कुण्ड बना देता है। कमल पर आसीन सीता जलकुण्ड में शीलव्रत की प्रभावना कर देती है। देवगण पुष्प वर्षा करते हैं, जय-जयकार करते है। करते हैं। सीता प्रभु के ध्यान में डूबी है, हे प्रभु! इतना आनन्द, इतनी शान्ति कभी प्राप्त न हुई। जब तक राम का अवलम्बन था, तब तक वह सुख, वह शान्ि नहीं थी, जो राम के अवलम्बन को छोड़कर एक मात्र आपकी शराण को पाकर प्राप्त हुई है। हे प्रभो! अब मै। आपकी शरण को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहती।

सीता की श्रद्धा प्रगाढ़ हो चुकी थी। सीता को अग्निकुण्ड भी भयभीत न कर सका, क्योंकि निशंक श्रद्धा थी। राम भयभीत हैं, क्योंकि शंका के पक्षपाती हैं राम की आँखें बन्द हैं, राम में यह दृश्य देखने का साहस नहीं। लेकिन जैसे ही सीता की जयकार सुनी – आँखें खोलीं, तो दौड़ पड़े सीता के पास, सीता के निकट। कहीं सीता को कुछ हो तो नहीं गया। सीता के पास, सीता के निकट। कहीं सीता को कुछ हो तो नहीं गया। सीता के पास जाकर बोले – सीता घर चलो, महलों में चलो, राज भवन में चलो। अब यहाँ रूकना, शोभा नही देता। तुम्हारे लिए सारा नगर अयोध्या पुकार रहा है। तुम्हारे बिन राजभवन सूना है। सीता कहती है – मुझे राजभवन नहीं चाहिए, मुझे राम भवन भी नहीं चाहिए, क्योंकि मुझे आतमराम का मंगल प्रासाद उपलब्ध हो गया हे। राम कहते हैं – नहीं सीते, तुम घर चलो। देखो तुम्हारे देवर लक्ष्मण के आँसुओं की धार, वह तुम्हो बन कितना व्याकुल है। देखो हनुमान को, यह तुम्हारे चरण कमलों में बैठा है। सीता कहती है – राम, मोह का बंधन हैं यह। अभी तक मैं आपकी शरण में थी, लेकिन आज मुझे प्रभु की शरण मिल गई। परमात्मा का सहारा प्राप्त हो गया है। अब राजमहल की ओर नहीं, अपितु आत्म महल की ओर प्रस्थान करना है। मै। आर्शिका का व्रत ग्रहण करके अपना आत्म कल्याण करूँगी और सीता ने केशलोंच की पुथ्वीमती आर्यिका के पास आर्यिका व्रत ग्रहण कर लिया।

कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है, कि जब सत्य पर शंका का साया पड़ा, तो सत्य को अगिन-परीक्षा से गुजरना पड़ा। इसलिये शंका की परछाई भी अपशकुन है, अशुभ है, अमंगल है।

शुभ शकुन सिद्धि नहीं, संकेत है –

आपने कभी खल किया – जब आप किसी कार्यवशात् अपने घर से रवाना होते हैं, तो अपने कार्य की सफलता के लिए विभिन्न शुभ-शकुनों कामना करते हैं। घर से चलते ही, पत्नी दीप से आरती उतारती है। रास्ते में भी गाय अपने बछड़े को दूध पिलाते मिल जाये, तो आप अपनी सफलता का विश्वास कर लेते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ भरे हुये कलश लिये मिल जायें, तो आपकी खुशी चौगुनी हो जाती है। आप किसी भी अपशकुन का अपने शुभ कार्य में दर्शन नहीं चाहते।

फिर भले आदमी, थोड़ा तो विचार कर ले। जब तू अपने लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए लौकिक कार्यों में सफलता हासिल करने के लिए नाना प्रकार के शुभ-शुकुन की कामना करता है, शुभ-शकुन की ही दिल में चाहत करता है, अपशकुन से मुँह फेर लेता है, फिर परमार्थिक कार्यों की सिद्धि के लिये परमार्थ के पथ पर मुक्ति की यात्रा में तू शुभ की कामना क्यों नहीं करता? अपशकुन से बचने का प्रयास क्यों नहीं करता?

मुक्ति की यात्रा में परमार्थ के पथ पर, परमात्मपने की सिद्धि के लिए प्रथम शुभ-शकुन है 'श्रद्धा। श्रद्धा का शुभ-शकुन मिल गया, तो अपनी सफलता को स्वीकार लेना। अपनी सफलता को स्वीकार का कार्य की सिद्धि के लिए आगे निशंक हो बढ़ते चले जाना। आप अपने परमात्मा की सिद्धि कर लोने।

और मजे की बात तो ये है कि तथाकथित मुमुक्ष शुभ-शकुन को ही सिद्धि समझ लेते है। यानि श्रद्धा को ही परमात्म उपलब्धि मान बैठते हैं। चरित्र अर्थात् शुभशकुन को पाकर सफलता को स्वीकार कर आगे कदम बढ़ाने को हेय कह देते हैं। उन्हें कौन समझाये कि शुभशकुन सिद्धि नहीं है, अपितु सिद्धि के लिये मात्र संकेत है। अब उस संकेत को पाकर आगे बढ़ो अर्थात् चारित्र को उपलब्ध होओ। हेय कहकर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मत पटको। बिना चले मात्र शुभशकुन ही सिद्धि दिला देगा, ऐसा कहना निरी मूर्खता है। सीता को शुभशकुन मिला, ज्ञान ने प्रेरणा दी, चारित्र की ओर कदम बढ़ा दिये। अर्यिका व्रत ग्रहण कर लिया।

इसलिए ख्याल रहे, शुभशकुन श्रद्धा के मिलने पर चारित्र हेय है, ऐसी शंका करना ही अपशकुन है। ऐसा अपशकुन मत पालना अन्यथा श्रद्धा का विध्वंस हो जायेगा।

इसलिए ख्याल रहे, शुभशकुन श्रद्धा के मिलने पर चारित्र हेय है, ऐसी

शंका करना ही अपशकुन है। ऐसा मत अपशकुन मत पालना अन्यथा श्रद्धा का विध्वंस हो जायेगा।

शंका सृजन नहीं विध्वंस है। शंका उन्नति नहीं पतन है। शंका विश्वास को समाप्त कर देती है, शंका प्रेम को मिटाती है, शंका में हर अनर्थ संभव है। शंका में फूल सा जीवन शूल सा हो जाता है, शंका के आते ही मधुमास खो जाता है, शंका के आते ही वसंत में भी पतझड़ लग जाता है, शंका में विचार नहीं विकार होता है।

नींद में स्वयं का ख्याल, स्वयं की संभाल नहीं –

मैंने सुना है – कि तीर्थंकर महावीर के समय एक सम्राट था, जो महावीर का अनन्य भक्त था और तीर्येश की वाणी सुनने को सदैव आतुर रहता था। आत्मिक प्यास से भरा हुआ था। उसका नाम था सम्राट श्रेणिक। उसकी रानी का नाम चेलना था। सम्राट रानी को बहुत प्रेम करता था, हृदय से चाहता था। रानी चेलना भी सम्राट के प्रति समर्पित थी। रानी का प्रेम बादलों की तरह सम्राट पर बरसता था ओर सम्राट का हृदय प्रेम के बादल देखकर मयूर की तरह हर्षित हो जाता था। रानी नि:स्वार्थ भाव से पति सेवा में संलग्न रहती थी और केवल पति सेवा में ही निरत न थी, अपितु धर्मयात्रा की सहयात्री भी थी। सम्राट श्रेणिक के जीवन में जैन धर्म (वीतराग धर्म) के प्रति अगाध श्रद्धा का जागरण रानी चेलना के सद्प्रयासों एवं प्रेरणा का ही परिणाम था।

एक दिल की बात है। सम्राट श्रेणिक रानी के गाढ़ालिंगन में सो रहे थे। रात्रि का समय था। रात घनी थी। रात गहरी थी। रात काली थी। चारों ओर अंध कार व्याप्त था। सर्दी का मौसम था। जल को बर्फ बना देने वाली कड़ाके की ठंड थी। शीत लहर वह रही थी। रानी गहरी निद्रा में थी, गहन नींद में थी। सोते समय रानी का एक हाथ रजाई के बाहर निकला रह गया। शीत का प्रकोप रानी के हाथ पर आक्रमण कर चुका था। शीत के कारण हाथ निश्चेष्ट सा हो गया था। रानी को कुछ पता न था। रानी को ख्याल भी नहीं था, कि हाथ रजाई के बाहर है और शीत लहर में स्नान कर रहा है। नींद में कुद भी ख्याल नहीं रहता, क्योंकि निद्रा में मूर्छा का अवतरण होता हे। निद्रा में बेहोशी पैदा होती है। निद्रा में स्वयं का ख्याल, स्वयं की संभाल भी नहीं रहती। निद्रा में बुद्धि के उत्पात विलीन हो जाते हैं। निद्रा में अपने-पराये का भाव खो जाता है। निद्रा में ''मैं'' और ''मेरा'' का भाव भी नहीं रहता। निद्रा में सारे सम्बन्ध विसर्जित हो जाते हैं। निद्रा के आते ही सारे लड़ाई-झगड़े भी सो जात हैं। जब तक आँख खुली

है, तब तक झंझटे खड़ी होती हैं, उत्पात अपना सिर उठाते हैं। आँख बन्द हुई, निद्रा का आगमन हुआ, फिर सारी झंझट मिट जाती है। आपसे एक घटना कहता हूँ–

एक मध्यम्वर्गीय परिवार था। छोटा-सा मकान और छोटा-सा परिवार अपना सुख से जीवन-यापन करता था। पति-पत्नी और उनके दो बच्चे ही परिवार के सदस्य थे। रात्रि हुई 10 बजने को थे। दोनों ही बच्चे टी.वी. के सामने बैठे'' कौन बनेगा करोड़पति'' सीरियल का आनंद ले रहे थे। माँ ने तुरंत ही बुलाया। बच्चों को आवाज दी। बच्चों के आते ही माँ ने प्रेम से कहा–बेआ 10 बज रहे हैं, सुबह स्कूल के लिए जल्दी तैयार होना है। जाओ अपने कमरे में जाकर सो जाओ। बच्चे आज्ञाकारी थे। माता-पिता का आदर सम्मान करते थे। माता-पिता के चरण स्पर्श कर अपने कमरे में जाकर हँसते-खेलते हुए सोने की तैयारी करने लगे।

थोड़ी देर में गुड्डू और गुड्डी आपस में झगड़ने लगे। भैया-बहिन को खेलने के लिए उनके पापा एक गुड़िया लाये थे। गुड्डू कहता है, गुड़िया को हम अपने साथ सुलायेंगे। गुड्डी कहती है गुड़िया को हम अपने पास सुलायेंगे। दोनों के लड़ने झगड़ने की आवाज माँ ने सुनी। माँ तुरन्त ही कमरे में आई – क्या बात है? क्यों आपस में लड़-झगड़ रहे हो? गुड्डू ने कहा – माँ–माँ गुड़िया को मै। अपने पास सुलाऊँगा। गुड्डी मुझसे लड़ती है। तब गुड्डी ने कहा – नहीं माँ, गुड़िया को मैं अपने पास सुलाऊँगी। माँ ने गुड्डी को समझाया – बेटा गुड़िया नहीं मानी। तब माँ ने गुड्डू से कहा-तो गुड्डू भी तैयार न हुआ। अंत में माँ ने समझाते हुए कहा – हमारे बच्चे तो बहुत अच्छे हैं। वे अपनी माँ की बात को जरूर मानेंगे।

अच्छा गुड़िया को बीच में लिटा लो। कल आपके लिए ढेर सारे खिलौने देंगे। गुड्डू-गुड्डी ने माँ की बात मान ली। खुश होते हुए गुड़िया को बीच में लिटा लिया और बच्चे सोने की तैयारी में जुट गये। माँ कमरे से निकलकर नीचे अपना कार्य करने लगी। थोड़ी देरे में बच्चे फिर आपस मे झगड़ने लगे। बच्चों का शोरगुल सुनकर माँ फिर कमरे में आई पूछा-अब क्या बात हो गई? क्यों आपस में शोरगुल कर रहे हो? गुड्डी कहती है – माँ गर्मी लगती है, मैं पंखा चलाऊँगी। गुड्डू कहता है–मैं पंखा नहीं चलाने दूँगा, माँ सर्दी लगती है। मुझे ठंडी लगती है। माँ ने दोनों की समस्याएँ सुनी। माँ ने दोनों की बात सुनीं माँ ने गुड्डी को धीरे से कान में कुछ कहा। गुड्डी माँ की बात मान गई पंखा बन्द कर दिया। माँ ने दोनों को समझाया – देखो रात्रि अधिक हो गई है, जन्दी सो

जाना, कहकर नीचे चली गई। गुड्डू और गुड्डी गुड़िया का बीच में सुलाकर खुद भी सो जाते हैं।

गुड्डू तो सो गया, लेकिन गुड्डी अपने चादर से मुँह निकाल-निकालकर देखती है, कि भैया सोया कि नहीं? भैया को सोया जानकर धीमे से उठती है और पंखा चालू कर देती हे। पंखा चालू कर गुड्डी भी सो जाती हे। गुड्डू को कुछ पता नहीं, कि पंखा चाले है या नहीं, जिसको लेकर गुड्डू झगड़ रहा था। न अब गुड़िया का ख्याल है, न खुद की संभाल है, न ही ठंडी लगने या पंखा चलने का सवाल है। निद्रा के आते ही सब-कुछ खो गया। गुड़िया भी एक तरफ पड़ी है, उसकी संभाल को कोई ख्याल नहीं। थोड़ी देर में अपने बच्चों को सोया जान, माँ ऊपर कमरे में प्रवेश करती है। अपने दोनों बच्चों को देखती है, उनके गुड़िया के लड़ाई-झगड़े पर हँसती है। निद्रा में हैं, गुड्डू और गुड्डू दोनों को ही गुड़िया का कोई ख्याल नहीं। जब तक आँख खुली होती है, तब तक ही झगड़े होते हैं। आँख बंद होते ही सारे झगडे, सारे विकल्प खो जोते हैं, मिट जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं। माँ हँसती हुई, मुस्कुराती हुई पंखा को बंद करती हुई चली जाती है। अब गुड्डी को भी न गर्मी का ख्याल है, न पंखा चलाने का सवाल है। गुड्डू और गुड्डी दोनों ही प्रगाढ़ निद्रा में सो गये। निद्रा के आते ही मैं और मेरा का श्राव भी खो गया। निद्रा मं न रिश्ता रहता है, न कोई संबंध, सब तिरोहित हो जाते हैं, पता भी नहीं चलता।

नींद है छोटी मृत्यु–

और मजे की बात तो ये है कि निद्रा में दूसरों का ख्याल रहना तो दूर रहा, अपने अन्दर आती-जाती श्वांस का भी ख्याल नहीं रहता। चलती हुई सांस का भी पता नहीं चलता। जिसके होने पर जीवन और न होने पर मृत्यु घटित होती है, उसका भी अहसास नहीं होता। उसका भी अनुभव नहीं होता। श्वांस को जैसी कीमती वस्तु का भी ख्याल निद्रा आते ही खो जाता हे। इसीलिए नींद को छोटी मृत्यु कहा है, इसीलिए निद्रा को लघु मौत कहकर पुकारा गया है, क्योंकि नींद में वस्तु के खो जाने पर भी उसका खोना प्रतीत नहीं होता। जितने समय तक नींद की अवस्था होती है, उतने समय तक संसार की सारी वस्तुएँ छूट जाती है। अपना शरीर भी अपने ख्यालों से दूर हो जाता है। अपनी दुकान, अपना मकान, अपना पुत्र, अपना पिता, अपनी माता, अपने रिश्तेदार, अपने पड़ोसी किसी का भी ख्याल नहीं रहता।

मुंगेरीलाल एक दिन सुन्दर टी शर्ट पहने हुए था। नगर के लोगों ने देखा

तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जो भी देखता मुंगेरीलाल के टी शर्ट की प्रशंसा किए बगैर न रहता। मुंगेरीलाल जिस रास्ते से गुजरता, लोगों की दृष्टि उसी पर जम जाती। मुंगेरीलाल भी लोगों की इस हरकत से मन ही मन फूले न समाते। चूँकि मुंगेरीलाल को कभी लोगों ने इस प्रकार सुन्दर वस्त्रों में नहीं देखा था, इसलिए उनका देखना स्वाभाविक था और मुंगेरीलाल को इतनी हसरतभरी निगाह कभी न मिली थी, इसलिए उनका भी फूला न समाना स्वाभाविक था। एक दिन पड़ौसी रामलाल ने कहा – मुंगेरी तुम्हारी टीशर्ट बहुत सुन्दर है। सारे नगर में चर्चा का विषय बनी हुई है। आखिर इतनी सुन्दर टीशर्ट कहाँ से लाये? मुंगेरी ने मुस्कुराते हुए कहा – शहर की दुकान से लाया हूँ। पड़ौसी रामलाल ने फिर पूछ लिया – कितने की लाये हो? मुंगेरीलाल ने कहा – ये बताना मुश्किल है, क्योंकि जिस समय हम यह टीशर्ट लाये थे, उस समय दुकानदार नींद में था।

आप लोग हँस रहे हैं, क्योंकि मुंगेरीलाल का उत्तर जायकेदार है। लेकिन यह इस सार्थकता का उद्घाटन करता है कि नींद में वस्तु का भी ख्याल नहीं रहता। सारे ख्याल खो जातो हैं, सो जाते हैं। सारे ख्याल थोड़े समय के लिए मिट जाते हैं, पिट जाते हैं और नींद एक छोटी मृत्यु घटित हो जाती है।

और मजे की बात तो ये है, कि शंका नींद की सहेली है। शंका नींद की फ्रेण्ड है क्योंकि नींद में वस्तु खो जाती है और शंका में श्रद्धा खो जाती है। परमात्म आस्था विलीन हो जाती है। नींद में वस्तु का ध्यान नहीं रहता, वस्तु का ख्याल नहीं रहता और शंका में श्रद्धा का ख्याल नहीं रहता। शंका में श्रद्धा का ध्यान नहीं रहता।

लेकिन आज आदमी जहाँ शंका नहीं करना चाहिए, वहाँ तो शंका करता हैं और शंका करना चाहिए, वहाँ शंका नहीं करता। यदि हमें शंका करना है, तो अपनी नींद पर शंका करें, कहीं नींद के बाद सुबह होगी या नहीं? साँसों से परिचय होगा या नहीं? कहीं नींद में जाने के बाद साँसों का खजाना लुट तो नहीं जायेगा? कहीं नींद में जाने के बाद साँसों का अमृत पी तो नहीं जायेगी और हम नये दिन से वंचित तो नहीं हो जायेंगे? इसलिए शंका करना है तो अपनी नींद पर करो। शंका करना है तो अपनी साँसों पर करो। कहीं ये साँसें खो तो नहीं जायेंगी? कहीं ये साँसें हमारी जिंदगी को छीन तो न लेंगी? यदि इन साँसों ने दम तोड़ दिया, तो हम सुबह परमात्मा का स्मरण कैसे कर पायेंगे?

यदि अपनी साँसों के प्रति शंका से भर जाओगे, तो साँसों की कीमत भी समझ में आ जायेगी। फिर तुम अपनी साँस-साँस पर परमात्मा का नाम लिख सकोगे। परमात्म स्मरण का भाव आपके जीवन में जग जायेगा। इसलिए शंका

करना है, तो अपनी मृत्यु पर शंका जरूर कर लेना। जिससे तुम्हारे जीवन में सजगता पैदा हो जाये, जिसमें तुम्हारे जीवन में जागृति के द्वार खुल सकें, जिससे एक नई सुबह को निमंत्रण दिया जा सके।

अकड़, सहयोगी की हन्ता, असहयोग की नियन्ता –

तो मैं आपको बतला रहा था, कि नींद में, निद्रा में स्वयं का ख्याल और स्वयं की संभाल भी नहीं रहता। रानी चेलना का हाथ रजाई से बाहर था। रानी नींद में थी, इसलिए रानी को पता न चल सका। सर्दी के कारण रानी का हाथ अकड़ गया, रानी का हाथ जड़ हो गया। जब रानी की निद्रा टूटी, तो हाथ की शीतलता का अहसास हुआ। शीत के कारण हाथ के अकड़ जाने का अनुभव हुआ। रानी ने अपने हाथ को रजाई के अन्दर ले जाने का प्रयास किया, लेकिन हाथ मुड़ने को राजी न था, तैयार न था।

और ख्याल रहे, यदि आदमी के जीवन में भी अकड़ पैदा हो जाये तो आदमी भी मुड़ने को तैयार नहीं होता, राजी नहीं होता। यदि आदमी के जीवन में अकड़ का भाव आ जाये, तो मोड़ना कठिन हो जाता है। इसलिए मैं आपसे आदमी के विषय में एक सूत्र जरूर कहता हूँ, कि ''अकड़ आदमी की सबसे बड़ी पराजय है, और अकड़ से मुक्त हो जाना, आत्मजयी होने की पराकाष्ठा है।'' फिर अकड़वान आदमी को कभी अकलवान भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अकड़ और अकल दोनों का भी समागम नहीं होता। दोनों का कभी मिलन भी नहीं होता। अकड़ और अकल दोनों विरोधी अवस्थाएँ हैं, इसलिए दोनों को कभी एक-साथ हँसते-मुस्कुराते नहीं देखा जा सकता। जैसे प्रकाश और अंधकार का आपस में कोई व्यवहार नहीं, उसी प्रकार अकल और अकड़ का भी कोई व्यवहार नहीं, कोई सामंजस्य भी नहीं। अकड़ के आते ही अकल पलायन कर जाती है। अकड़ के आते ही अकल दूर हट जाती है। अंधकार ने प्रकाश का दर्शन नहीं किया और अकड़ ने अकल का दर्शन नहीं किया, क्योंकि जिस क्षण अकड़ का आगमन होता है, उसी क्षण अकल का बहिर्गमन होता है।

और जितने हिस्से में अकड़ पैदा होती है, उतने हिस्से में हम जड़ हो जाते हैं, पत्थर हो जाते हैं। मुंड़ने का भाव खो जाता है और जितनी गहन अकड़ पैदा होती है, उतनी ही गहन जड़ता उत्पन्न हुई, उतना ही हाथ के मुड़ने का भाव खो गया। सबसे अलग होकर चलन की पात्रता जगा ली। शरीर का हर अवयव सहयोगी है, लेकिन अकड़ा हुआ हाथ सहयोग की भावना खो चुका है। उसी प्रकार अकड़ा हुआ आदमी असहयोग से भरा होता है।

अकड़ खास मुर्दे की पहचान –

अकड़ का अर्थ है – लोच का खो जाना। लचीलापन मिट जाना। झुकने को राजी न होना। नम्रभाव का विलीन हो जाना और अकड़ खास मुर्दे की पहचान है। मुर्दा यानि स्वयं की कोई सोच नहीं, कोई विचार नहीं, कोई समझ भी नहीं और यदि कोई कुछ समझाने का प्रयास भी करे तो भी जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ता। जीवन शैी में कोई अन्तर नहीं आता। ओर बात भी सही है, मुर्दा को कोई संगीत सुनाये तो उस पर प्रभाव भी क्या पड़ेगा, क्योंकि जीवन शक्ति बहिर्गमन कर चुकी है। अकड़वान आदमी भ्झी मुर्दावत् होता है। उसके जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अकल नहीं रही, अकल का बहिर्गमन हो चुका है। सोच-विचार चिन्तन-मनन की पात्रता भी खो चुकी है। ग्रहण करने का भाव समाप्त हो चुका है। और सच तो यह है, कि अकड़ में पकड़ नहीं रहती, पकड़ खो जाती है, पकड़ ढीली हो जाती है औ जब पकड़ ढीली हो जाती है या पकड़ खो जाती है, तो गिरना निश्चित हो जाता है। धूल चाँटने का अवसर स्वयमेव घटित हो जाता है।

अकड़, ईर्ष्या का परिणाम है –

एक था आदमी। शायद मुंगेरीलाल रहा होगा। उसकी खास आदत अकड़कर चलने की थी। अकड़कर बोलना, अकड़कर खड़ा होना, अकड़कर चलना उसकी आदमी में शुमार था। यदि अपने समाने किसी को अकड़ा हुआ देख ले, तो वह उससे भी ज्यादा अकड़कर खड़े होने मु सुख महसूस करता था। उसका पड़ौसी रामलाल उससे सदग्व ईर्ष्या किया करता था। उसने इसकी अकड़ की कमजोरी जान ली और अपनी अकल का प्रयोग करने लगा। जैसे ही मुंगेरीलाल को सामने से आता हुआ देखा, वह रामलाल थोड़ो और अकड़कर खड़ा हो गया। मुंगेरीलाल के पास आने पर रामलाल ने थोड़ा अकड़कर खड़ा हो गया। मुंगेरीलाल के पास आने पर रामलाल ने हाय-हैलो किया व थोड़ा और अकड़कर खड़ा हो गया। मुंगेरीलाल ने उसकी अकड़ देखी, तेा मुंगेरीलाल भी थोड़े और अकड़कर खड़ा हो गया। मुंगेरीलाल ने उसकी अकड़ देखी, तो मुंगेरीलाल भी थोड़े और अकड़कर खड़े हो गये। रामलाल ने मुंगेरीलाल को अकड़ा देख अपनी अकड़ और बढ़ा ली। मुंगेरीलाल ने देखा तो बातों ही बातों में वह और अधिक अकड़कर खड़ा होने का प्रयत्न करने लगा, लेकिन वह और अधिक अकड़कर खड़ा होता, कि पैरों की पकड़ ढीली हो गई और मुंगेरीलाल जमीन पर गिरे पड़े। रामलाल को सुख महसूस हुआ। ईर्ष्या को बल मिला।

इसलिए ध्यान रहे कभी अकड़कर मत चलना। अकड़कर मत खड़े होना। नहीं तो धूल में मिल जाओगे। इतिहास गवाह है, कि अच्छे-अच्छे बुद्धिमान लोग भी अकड़ में आकर धूल-धूसरित हो गये। मिट्टी में मिल गये। पतन की गर्त में समा गये। इसलिए अकड़ में नहीं अकल में जीना, विवेक में जीना, क्योंकि विवेक से जीना वाला कभी गिरता नहीं, संभलता है। मिटता नहीं बनता है।

सूत्र कहता है – ''अकड़ आदमी की सबसे बड़ी पराजय है और अकड़ से मुक्त हो जाना, आत्मजयी होने की पराकाष्ठा है।''

आज जहाँ देखो, वहाँ अकड़ है। जिसे देखो उसे अकड़ है, जब देखो तब अकड़ है। कोई पद की अकड़ में जी रहा है, तो कोई पदक की अकड़ में जी रहा है। किसी की पत्नी खूबसूरत है, तो पत्नी की अकड़ है। किसी का पति सुन्दर है, बलशाली है, तो पति की अकड़ है। किसी के पास धन-दौलत है, ऐशो-आराम है, तो उसकी अकड़ है। किसी के पास आज्ञाकारी नौकर-चाकर हैं, तो उन्हीं की अकड़ है। किसी को अपने मकान की अकड़ है, तो किसी को दुकान की अकड़ है। किसी को कार, बंगला की अकड़ है। कोई दान देकर अकड़ में जी रहा है, तो कोई दान लेकर अकड़ में जी रहा है। किसी ने अपने को दापति होने की घोषणा कर रखी है, तो किसी ने अपने को बड़ा भिखारी होने की मुनादी पीट रखी है। कुछ पंक्तियाँ कहता हूँ–

राह चलते,
एक भिखारी ने कहा –
दोस्त!
अब किस्मत जगा ले
पुण्य का अवसर मिला है,
दान देके कुछ कमा ले।
बात उसकी जंच गई,
तो जेब से सिक्के निकाले,
जब अठन्नी देके बढ़ने को हुआ,
फेंककर उसने कहा –
तू यहीं चादर बिछा ले।

तो कोई श्रावक धर्मात्मा होने की अकड़ में जी रहा है, और कोई साधू आध्यामिक होने की अकड़ से भरा है, अपने को आध्यात्मिक साधू होन का दावा कर रहा है ओर इस डार से भरा है, कि कोई अन्य साधू आध्यात्मिक होने

का प्रतियोगी न बन जाये। मुझसे बड़ा आध्यात्मिक सन्त न हो जाये। जो मेरी मान्यता है लोगों में, वह कोई और न छीन ले। ऐसे तथाकथित साधू, किसी दूसरे साधू को देखकर ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगते हैं, क्योंकि ''अकड़ ईर्ष्या का परिणाम है''। ऐसे त्यागी श्रावक और साधू भी अपनी आध्यात्मिक अकड़ को त्याग की सम्पत्ति बना लेते हैं। ऐस आध्यात्मिक त्यागी, दूसरे आध्यात्मिक त्यागी को देखकर स्पर्धा की शंका भावना से भर जाते हैं। उसे अपना प्रतियोगी मानकर अकड़ के द्वार पर खड़े हो जाते हैं और''जहाँ आ जाती है, वहाँ मोक्षमार्ग संकीर्ण हो जाता ह''।

अकड़ में मुक्ति की पकड़ नहीं, कर्म की रगड़ है –

जीसस ने कहा है – ऊँट भी निकल सकता है सुई के छेद से, लेकिन वे जो अकड़ से भरे हैं, मुक्ति के द्वार में प्रवेश नहीं पा सकते। ऊँट भी निकल सकता है सुई के छेद से, लेकिन अकड़ ही जिनकी सम्पत्ति बन गई है, ऐसे धनवान मुक्ति के द्वार में प्रवेश नहीं पा सकते। आपने निर्धन आदमी को देखा होगा, जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह भी मान पर चलता है कि उसके पास भी कुछ है। और ऐसे भी लोग हैं, जो अपनी निर्धनता को ही धन मान लेते हैं। अगर कोई आदमी अपने त्याग का, अपने धन, दौलत, माकन, दुकान, उपाधि , आध्यात्मिक होने का गर्व करता है, तो इसका अर्थ हुआ आदमी अकड़ में जी रहा है। उसने अपना त्याग भी बैंक-बैंलेंस बना लिया है।

मैंने सुना है, कि एक सम्राट चर्च में प्रार्थना कर रहा था। कोई धर्म का बड़ा दिन था और सभी प्रार्थना करने को आये थे। सम्राट भी आया था और फिर प्रार्थना करते-करते सम्राट जोश में आ गया, जैसे कि हम सभी आ जाते हैं। और फिर वह जरा ज्यादा बाते करने लगा। वह यहाँ तक बोल गया कि हे प्रभु! मैं तेरे चरणों में क्षुद्र से क्षुद्र धूल हूँ। मैं न कुछ हूँ, नाचीज हूँ। मैं कुछ भी नहीं जब वह यह कह रहा था। तब उसने देखा कि पास में एक साधारण आदमी भी प्रर्थना कर रहा है और वह भी प्रभु से कह रहा है – मैं भी कुछ नहीं हूँ, न कुछ हूँ। उस सम्राट न कहा – कि सुन यह कौन मुझसे प्रतियोगिता कर रहा है। ध्यान रहे, मेरे राज्य में मुझसा न कुछ, मुझसे ज्यादा न कुछ, नाचीज और कोई दूसरा नहीं हो सकता। जैसे वह सम्राट यह भी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई और भी उसके राज्य में हो, जो यह कह सके कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। उसमें भी सम्राट ही आगे रहेगा। इसी प्रकार तथाकथित साधू भी अपने सामने अपना जैसा दूसरा आध्यात्मिक साधू आगे हो, उसके लिए राजी नहीं उसमें भी वह ही आगे रहें, इस अकड़ से भरे हैं और अकड़ आदमी की सबसे बड़ी

पराजय है, क्योंकि ''अकड़ में मुक्ति की पकड़ नहीं, कर्म की रगड़ है। अकड़ में मोक्ष की पकड़ नहीं, मोह की जकड़ है। मोह में जीना, पराजित होकर जीना है''।

इस दुनिया में अकड़कर चलने वाले स्टालिन, माओ, हिटलर, चंगेज खाँ, तैमूरलंग, नेपोलियन और भी न जाने कितनी आत्मायें हुईं, जो अन्त में मौत से, मोह से पराजित हो गई लेकिन जो अकड़ से मुक्त हो गये, वे आत्मजयी मोक्ष को उपलब्ध हो गये।

इसलिए ख्याल रहे, शंका करना है तो अपनी अकड़ पर करना, क्योंकि अकड़ मोक्ष की उपलब्धि में बाधक है। अकड़ की शल्य क्रिया करें, तो अ+कड़ बन जाता हे। यानि 'अ' से आचरण, अ से आत्मा, अ से अकल। जो आचरण से कढ़ गया, जो अकल से कढ़ गया, जो आत्मा से कढ़ गया, बहिरात्मा हो गया, उस अकड़ कहते हैं। और अकल यानि अ+कल अर्थात् आज का किया, कल का भविष्य है। मात्र जो किया, कल वहीं उपलब्ध होगा। इसी का नाम है अकल।

यदि शंका करना है, तो अकड़ तो अकड़ पर कर लेना, जिससे अकल की सम्पदा प्राप्त हो जाये, जिससे अकल का अमृत जीवन घट में अवतरित हो जाये।

शंका की कीड़ा : सिर दर्द में पीड़ा –

तो रानी चेलना ने अपने हाथ को आहिस्ते से मोड़ने का प्रयास किया, लेकिन शीत की संगति से हाथ अकड़ गया, मुड़ने को राजी नहीं, तैयार नहीं। तब रानी ने थोड़ा जोर देकर हाथ को मोड़ने का प्रयास किया। हाथ थोड़ा मुड़ा, लेकिन पीड़ा दे गया, वेदना दे गया और पीड़ा के कारण रानी जोर से कराह उठी। रानी की कराह से सम्राट श्रेणिक की नींद खुल गई। हाथ की अकड़ और उसकी असहनीय पीड़ा के अनुभव से रानी गहन सोच में डूब गई, विचारों की सरिता में निमग्न हो गई। सोचने लगी हम तो महल के अन्दर हैं, शीत का विराध करने वानी हर सुविधा सम्पन्न हैं। सर्दी लगती है तो रजाई का सहारा ले लेते हैं, अन्य-अन्य प्रकार की व्यवस्थायें जुटा लेते हैं। खिड़की, दरवाजे बंद कर लेते हैं। जब हाथ के रजाई से बाहर होने पर जरा सी शीत में इतनी पीड़ा हो गई तो जिनके पास ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं, उनका जीवनयापन किस प्रकार होता होगा? इसी सोच में डूबी, रानी के मुख से सहसा निकल गया – ''ओह! आज की रात उनका क्या हुआ होगा?''

सम्राट की नींद टूट चुकी थी, सम्राट जागा हुआ था। रानी के इन शब्दों ने सम्राट को झकझोर दिया। सम्राट का हृदय जैसे फटने सा लगा। शब्दों ने सम्राट के अन्तस्थ को भेद दिया। शब्दों का आक्रमण सम्राट की बुद्धि पर हो चुका था। रानी के शब्द सम्राट को निस्तब्ध कर गये। सम्राट के गहन प्रेम को शंका का ग्रहण लग गया। हरी-भरी लहलहाती प्रेम की फसल को शंका के तुषार ने जला डाला। प्रेम की सरिता के स्वच्छ विचार, शंका के गन्दे नाले में बदल गये। सम्राट के मस्तिष्क में शंका का वायरस प्रवेश कर गया और सच्चे प्रेम को रूगण कर दिया, संक्रमित कर दिया। सम्राट नाना प्रकार की शंकाओं से भर गया, रानी के प्रति गलत विचारों से भर गया। रानी का आलिंगन, सर्पिणी का आलिंगन सा दुखकर प्रतीत होने लगा, क्योंकि सम्राट शंका का आलिंगन कर चुका था। रानी प्रेम से भरी है इसलिए सुख में है, आनंद में है। सम्राट घृणा से भरा है, दु:ख से भरा है, क्योंकि छाती पर शंका का पत्थर रखा है, शंका के भार से दवा है। शंका के आते ही सम्राट का चैन खो गया। इसलिए मैं आपसे भी कहता हूँ, कि अपने जीवन में शंका को मत पालना।

क्योंकि शंका की लहरें श्रद्धा की नाव को डुबो देती हैं। शंका की अग्नि, श्रद्धा के उपवन को जला देती है, विश्वास को खाक कर देती हैं। शंका का जल सिर्फ कीचड़ पैदा करता है, प्यास नहीं बुझाा। शंका का विषबाण श्रद्धा के हरे-भरे वृक्ष को सुखा देता है। शंका के काँटे, श्रद्धा के फूल को क्षत-विक्षत कर देते है। शंका की नाग्नि जिसे डस लेती है, वह तड़प-तड़पकर मृत्यु को उपलब्ध हो जाता है।

सम्राट शंका से भर गया, संदेह से आप्लावित है। रानी ने सम्राट को जागा हुआ जानकर प्रेम भाव प्रकट किया, लेकिन सम्राट की आँखें तप्त कोयले सी लाल थीं। सम्राट की साँसें लुहार की धौंकनी से भी ज्यादा तेज थीं। सुबह हो गई जानकर, सम्राट शैया से उठकर दैनिक चर्या से निवृत्त हो प्रतिदिन की भाँति तीर्थंकर महावीर के समवशरण की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगा और जाते वक्त मंत्री अभयकुमार को आदेश दिया – कि महारानी के महल को आग लगा दी जाये। मेर वापिस आने तक महल भस्म हो जाना चाहिए।

अभयकुमार ने सोचा, अभयकुमार ने विचार किया – सम्राट ने आज जैसा आदेश कभी नहीं दिया, इतनी जल्दबाजी कभी नहीं की। बिना मेरे परामर्श, विचार-विमर्श के कभी आज्ञा नहीं देते, लेकिन आज इतनी जल्दबाजी में निर्णय, निश्चित ही सम्राट किसी संदेह से ग्रस्त हैं, संदेह से भरे हुये हैं। अभयकुमार हर कार्य सोच-विचार कर ही करता था। अभयकुमार ने सोचा – क्या किया जाये? एक ओर सम्राट का आदेश, दूसरी ओर जल्दबाजी का निर्णय मालूम होता है।

आखिरकार मंत्री अभयकुमार ने समस्या का समाधान कर ही लिया। समस्या का निदान खोज ही लिया। क्योंकि जो बुद्धिमान होता है, विचारवान होता है, वह कोई भी कार्य जल्दबाजी में नहीं करता। किसी भी निर्णय में जल्दबाजी नहीं करता, अपितु हर कार्य पूर्वापर सोच-विचार कर ही करता है।

बुद्धिमान या बुद्धि का मान : सोचें कौन श्रेष्ठ –

लेकिन मैं आपको एक बात और बतला देना चाहता हूँ, मैं आपसे एक बात और कह देना चाहता हूँ कि ''जीवन में बुद्धिमान होना चाहिए और केवल बुद्धिमान होना चाहिए ही नहीं, अपितु बुद्धिमान जरूर ही होना चाहिए। क्योंकि बुद्धिमान होना अच्छी बात है, पर इतना ख्याल रखो – ''बुद्धिमान होना अच्छी बात है, किन्तु बुद्धि का मान होना अच्छी बात नहीं''। जो बुद्धिमान होगा, वो शुद्धिवान हो सकता है। आत्मशुद्धि को उपलब्ध हो सकता है, लेकिन जो बुद्धि के मान से ग्रसित हैं, जो बुद्धि वे मान में डूबे हैं, जो बुद्धि के मान को अपना अभियान बना बैठे हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी शुद्धिवान नहीं हो सकते। आत्मशुद्धि की पराकाष्ठा को उपलब्ध नहीं हो सकते। लेकिन कुछ पंडित, कुछ विद्वान, कुछ मुमुक्षु बुद्धिमान नहीं, लेकिन बुद्धि के मान में जी रहे हैं। तथाकथित मुमुक्षु बुद्धिमान नहीं, अपितु बुद्धि के मान को छाती पर लिये घूम रहे हैं। बुद्धि के मान को सिर की टोपी बनाकर लगाये बैठे हैं। इन्हें इतना भी पता नहीं, कि आत्मा की शुद्धि, बुद्धि के मान से नहीं, अपितु बुद्धिमान होने से ही हो सकती है। बुद्धिमान होने का अर्थ है – सत्य के लिए प्रज्ञज्ञ की छैनी से निर्णय करके ग्रहण करना। बुद्धिमान होने का अर्थ है – हर कार्य के लाभ-हापि पर विचार करना। हेय-उपादेय को प्रज्ञा की कसौटी पर कसकर देखना। अहंकार में नहीं, अर्हत् प्यार में जीना। और बुद्धि के मान में जीने का अर्थ है – अपनी तुच्छ बुद्धि का अहंकार करना, अपने थोथे ज्ञान का अहंकार कर जीना। जीवन में यही अहंकार सबसे ज्यादा घातक हुआ करता है।

और मजे की बात तो ये है कि जितना अहंकार तुम पंडित, पादरी, पुजारी, स्वाध्याय प्रेमियों में पाओगे, उतना अज्ञानियों में भी नहीं पाओगे। क्योंकि अज्ञानी तो अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर लेगा, अज्ञानी को अपने अज्ञान का अहसास है, पता है। उसे अपने अज्ञान से परिचय है। वह अपनी अज्ञानता को सहज में स्वीकर कर लेगा। जो आदमी शराब पीता है, गाँजा, भांग, तम्बाकू का सेवन करता है। वह आदमी अपने को तुच्छ समझता है, छोटा समझता है। निकृष्ट समझता है, गिरा हुआ समझता है, समाज के अयोग्य मानता है। अपने का पतित

होना स्वीकार कर लेता है। वह स्वयं कहता है मैं पी हूँ, दुरात्मा हूँ, तुच्छ हूँ, गिरा हुआ हूँ, किसी के योग्य नहीं, घर-परिवार समाज के भी योग्य नहीं हूँ। लेकिन जो आदमी स्वाध्याय प्रेमी है, जिसने ग्रन्थ को रट डाला है, मंदिर जाता है, पूजा करता है, थोड़ा-सा समय निकाल लेता है, ऐसा व्यक्ति मंदिर से अहंकार को ओढ़कर आता है। शास्त्र को पढ़कर आता है। राह चलते लोगों को देखकर अपनी गर्दन ऊँची कर लेता है। रीढ़ की हड्डी सीधी कर लेता है। और अपने धर्मात्मा होने का प्रस्तुतीकरण करता है। दूसरों के अधर्मात्मा होने का परिचय करता है। कहता है, मैं तो स्वाध्याय करके आ रहा हूँ, और तुम सब पापी लोग यहीं पर पड़े हुये हो। जितना तुम पंडित पादरियों को अहंकार से भरा पाओगे, उतना तुम साधारण आदमी को अहंकार से भरा नहीं पाओगे। थोड़ा सा स्वाध्याय कर लिया, अपने को शास्त्रज्ञ समझ बैठे। ऐस बुद्धि के मान से ग्रसित पंडित, स्वाध्यायप्रेमी अपने को वक्ता समझ लेते हैं, लेकिन वह वास्तविकता में वक्त नहीं होते, अपितु बकता होते हैं। ऐसे बुद्धि के मान से ग्रसित, बकता स्वाध्याय प्रेमियों में कभी समर्पण नहीं होता, संतो का चरण सानिध्य नहीं होता और बुद्धिमान वक्त के अंदर अहंकार नहीं होता, समर्पण भाव होता है। इसलिए ख्याल रहे ''बुद्धिमान होना अच्छी बात है, लेकिन बुद्धि का मान होना अच्छी बात नहीं।''

श्रद्धा जिलाती – शंका जलाती –

मंत्री अभयकुमार बुद्धिमान था। उसने राजाज्ञा के निदान को भी खोज लिया। सम्राट के संदेहास्पद आदेश से होने वाली विकट हानि को भी बचा लिया। महारानी के महल के पास खड़ा खाली पुराना भवन सम्राट की आज्ञा से जला दिया गया, खाली पुराने भव को आग लगा दी गई और स्वयं अभयकुमार तीर्थंकर महावीर के दर्शन की अभिलाषा से भरा हुआ समवशरण की ओर चल दिया। अभयकुमार खुश है, आनन्दित है, चेहरे पर कोई चिंता की लकीर नहीं, क्योकि समवशरण की ओर जा रहा है। सम्राट श्रेणिक समवशरण से लौट पड़ा। राहमें अभयकुमार को देखा, तो चेहरे परचिता की लकीरें और गहरा गईं। उसने अभयकुमार से पूछा – क्या महल को आग लगा दी? अभयकुमार न कहा – आपकी आज्ञा का पालन किया। सम्राट ने कहा – बड़ा अनर्ा हो गया। सम्राट तेजी से नगर की ओर बढ़ गया। एक ओर महल जल रहा है – दूसरी ओर सम्राट का हृदय जल रहा है। शंका का फल सिर्फ जलना है।

सम्राट ने रानी पर शंका की, तो महल को जलाने का आदेश दे दिया और

जब हमारा देव, शास्त्र, गुरु पर शंका का भाव जगता है, जब सात तत्वों पर शंका होती है, नौ पदार्थों पर शंका होती है, तो श्रद्धा का महल जलकर खाक हो जाता है। श्रद्धा का भवन नष्ट हो जाता है। जब शंका पैदा होती है, तो आस्था की अस्थियाँ उठ जाती हैं। इसलिए मैं आपसे इतना ही कह देना चाहता हूँ, कि ''आस्था की अस्थियाँ उठें, उसके पहले शंका की चिता तैयार कर देना'', अन्यथा शंका हमारा सर्वस्व हरण कर लेगी।

आचार्य वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार में लिखा है:–

णव य पदत्था एदे जिणदिट्ठा वण्णिदा मए तच्चा।
एत्थ भव जा संका दंसणघादी हवदि एसो॥278॥

अर्थात् जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित जो ये नव पदार्थ हैं, उनका मैंने वास्तविक वर्णन किया है। उसमें जो शंका हो तो वह दर्शन का घात कनरे वाली हो जाती है।

मनगढ़ंत टीकायें शास्त्र नहीं, कुशास्त्र हैं–

आचार्य श्री ने यहाँ पर बहुत अच्छी हितकारी तथा महत्वपूर्ण बात कही है जो हमारे लिये ध्यान देने योग्य है कि मैंने वही नव पदार्थ कहे हैं जो जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित हैं। मैंने वही वर्णन यिका जो अर्हन्त प्रभु ने कहा है। यनि हमनें अपनी बुद्धि से नहीं कहा, अपने विचारसे नहीं कहा, अपनी सोच से भी नहीं लिखा। अपने मन से नहीं लिया। जो भी लिखा, जो भी कहा वह अर्हन्त परमात्मा द्वारा कथित है, उसी का अनुसरण किया है।

लेकिन आज तथाकथित विद्वान, पंडित अपने मन के विचारों को, शास्त्रों में लिख रहे हैं। सिद्धातों को भी तोड़-मरोड़कर पेश किया जा रहा है। शास्त्रों की टीकायें सिर्फ सम्मान के टीका के लिये लिखी जा रही हैं। अपनी सोच अपना विचार प्रस्तुत किया जा रहा है – ऐसी टीकायें जिनमें विचारों का जहर भरा है। स्वच्छन्द धारणाओं का समावेश किया गया है। ऐसे जहरीले विचार कभी शास्त्र नहीं कहे जा सकते, अपितु कुशास्त्र की कोटि में आते हैं। और जो इन कुशास्त्रों का सेवन करेगा आश्रय लेगा, ध्यान रहे अपनी श्रद्धा को खो देगा, आस्था को मिटा देगा।

शास्त्र वह है, जो प्रमाणित वक्ता द्वारा कथित हो, क्योंकि यदि वक्ता प्रमाणित है, तो उसके वचन भी प्रमाणित होते हैं। यदि वक्त प्रमाणित नहीं है, तो उसके वचन भी प्रमाणित नहीं हो सकते। तथाकथित विद्वान, पंडित स्वाध्याय प्रेमी जो अपने प्रदूषित विचार प्रस्तुत करते हैं, कभी प्रमाणित नहीं कहे जा सकते।

क्योंकि हर ऐरे-गैरे नत्थू खैरे को प्रमाणित वक्ता स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिनापदिष्ट कहने से तात्पर्य ही यह है कि जिनेन्द्र भगवान अर्हन्त परमात्मा ही वक्ता है और उनके वचन प्रमाणिक हैं। वही हमारे लिये स्वीकार हैं, सेवनीय है।

जिनेन्द्रप्रभु द्वारा प्रतिपादित किया गया, उनके द्वारा ही कहा गया श्रुत शास्त्र है, जिनवाणी है। लेकिन जिन शास्त्रों में मनगढ़ंत व्याख्यायें, टीकायें हैं। जिनमें बुद्धि का विकार समाविष्ट किया गया है। वे सब कुशास्त्र हैं, खोटे शास्त्र हैं क्योंकि ये हमारी श्रद्धा को नष्ट करते हैं, चारित्र से दूर ले जाते हैं, चारित्रवान के प्रति उपेक्षा का पाठ सिखलाते हैं, अश्रद्धा के भाव जगात हैं।

शंका दंसणघादी –

इसलिये आचार्य श्री कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित जो नव पदार्थ हैं उनका जो व्याख्यान मैंने किया है। वह स्वारुचि से नहीं किया, स्व बुद्धि से भी नहीं किया, अपितु उसी का अनुसरण किया है। यदि इस पर कोई शंका करता है। संदेह करता है, अथवा संशय करता है, संदिग्धता पैदा करता है, तो वह अपने सम्यग्दर्शन का घात करता है, अपनी सम्यक् श्रद्धा का घात करता है और मिथ्या दृष्टि हो जाता है।

और मजे की बात तो ये है–आज आदमी नॉवेल पढ़ता है, उपन्यास पढ़ता है, उस पर शंका नहीं करता। लौकिक कहानी पढ़ता है, पत्र-पत्रिकायें, समाचार पत्र पढ़ता है उस पर भी शंका नहीं करता। लौकिक पुस्तकें पढ़ता है, तो सामान्य आदमी द्वारा लिखित हैं, विद्यार्थी अपना-अपना पाठ्यक्रम कक्षानुसार पढ़ते हैं, उन पर भी शंका नहीं होती।

इन लौकिक पुस्तकों को पढ़ने के बाद यह विचार होना चाहिये था कि ये हमारे जीवन में कितने सहयोगी हैं। इस पर विचार नहीं होता। निशंक स्वीकृति होती है और जिनोपदिष्ट आगम पर तर्क की छुरी चलाते हैं, काट-छाँट करते हैं, शंका की दूरवीन लगाकर देखते हैं।

इसलिये कहा है – 'शंका दंसणघादी' अर्थात् शंका दर्शन को घात करने वाली होती है, सम्यग्दर्शन को मलिन करने वाली होती है, मिथ्यात्व को जन्म देने वाली होती है। शंका आक्रामक है, श्रद्धा को मारने के लिए आतुर है। शंका का आक्रमण विवेक पर होता है, बुद्धि पर होता है और विवेक को पराजित कर देती है। विवेक के परजित होते ही हित-अहित का ज्ञान खो जाता है। शंका मे हित और अहित का परिज्ञान नहीं होता, हित-अहित का विचार नहीं होता।

सम्राट शंका से घिर गया। सम्राट शंका में डूब गया। तो इतना भी ख्याल

न रह कि मैं महल को जलाने का आदेश दे रहा हूँ, इसका परिणाम क्या होगा? और जब समवशरण से लौटा, अभयकुमार के द्वारा यह कहे जाने पर कि आग लगा दी है सम्राट से घिर गया और शीघ्र ही नगर की ओर चली पड़ा। सम्राट के पास पछतावा है, अपने को धिक्कार रहा है, अपने आप का क्रोधित हो रहा है, अपनी बुद्धि को धिक्कार रहा है। क्योंकि ''शंका में सिर्फ पछतावा और पश्चाताप ही शेष रहता है।''

जैसे ही सम्राट महल के करीब पहुँचा। तो देखता है, कि महल तो सुरक्षित है, महल तो जैसा का तैसा खड़ा है। महल तो हँस रहा है, ज्यों का त्यों मुस्करा रहा है, लेकिन महल के पास में ही खड़ा पुराना खाली भवन जल रहा है। सम्राट अभयकुमार के विवेक पर अत्यन्त प्रसन्न है। सम्राअ की साँस में साँस आई, दम में दम आई। सम्राट महल के अन्दर प्रवेश कर गेया और रानी चेलना को पाकर अत्यन्त हर्षित हुआ, अपनी शंका से होने वाली इतनी बड़ी हानि से बच गया।

हुआ यों था, कि एक दिन पूर्व जब सम्राट श्रेणिक अपनी महारानी चेलना के साथ तीर्थंकर महावीर के समवशरण में जा रहा था, रास्ते में एक निर्ग्रन्थ मुनि को नदी के किनारे कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान साधना करते हुये देखा। जब रात को महारानी का हाथ रजाई के बहार रह गया और शीत से अकड़ जाने पर पीड़ा का अनुभव हुआ, तो मुनि का ध्यान करते हुए सहज ही मुख से यह निकल आया कि, आज की रात उनका क्या हुआ होगा?

सम्राट ने महारानी के मुख से जब ये शब्द सुने तो रानी के चरित्र पर संदेह हो गया, रानी के चरित्र पर शंका कर बैठा, रानी को चरित्रहीन समझ बैठा और दिमाग में शंका का भूत सवार होते ही उसने महल को जला देने का अनुचित निर्णय कर लिया।

सम्राट ने महारानी के मुख से जब ये शब्द सुने तो रानी के चरित्र पर संदेह हो गया, रानी के चरित्र पर शंका कर बैठा, रानी को चरित्रहीन समझ बैठा और दिमाग में शंका का भूत सवार होते ही उसने महल को जला देने का अनुचित निर्णय कर लिया।

शंका करो किन्तु स्वयं पर –

आदमी बड़ा चालाक है। दूसरों पर शंका करता है, दूसरों के प्रति संदेह से भरा रहता है, लेकिन कभी स्वयं पर शंका नहीं करता, स्वयं के प्रति संदेह से नहीं भरता। दूसरों पर शंका करना सरल है, सजज है, लेकिन स्वयं के ऊपर शंका करना बहुत कठिन होता है। दूसरों के प्रति संदेह में जीना सरल है, लेकिन

स्वयं के प्रति संदेह में जीना दुष्कर है। प्रभु महावीर कहते हैं – जीवन में कभी संदेह का प्रवेश नहीं होना चाहिए और यदि शंका करना है, तो दूसरों पर नहीं स्वयं पर करो, स्वयं के धन पर करो। कहीं यह धन हमारी मृत्यु का सहयोगी तो नहीं हो जायेगा? जो धन आज आपके हाथ में है, धन आपके जीवन को छीनने की तैयारी तो नहीं कर रहा? जो धन आपको जीवन दे रहा है, वह आपके जीवन का हरण तो नहीं कर लेगा। शंका करना है तो स्वयं के तन पर करो, जो आज सुन्दर है। शंका करना है तो वैभव के प्रति करो, कहीं यह वैभव बैर को खड़ा तो नहीं कर देगा। कहीं यह वैभव शत्रुओं का अविष्कार तो नहीं कर देगा? यदि शंका करना है, तो स्वयं की साँसों पर करो, कहीं ये साँसे हमारा साथ तो नहीं छोड़ देंगी? शंका करना तो अपने घर, मकान, महल के प्रति करो। कहीं ये घर गिर तो नहीं जायेंगे? कहीं ये मकान शमशान तो नहीं बन जायेंगे? कहीं ये महल खण्डर तो नहीं हो जायेंगे? यदि शंका करना है तो अपने व्यपार पर करो, कहीं यह व्यापार नरक का द्वार तो नहीं खोल देगा? यदि शंका करता है तो अपने व्यापार पर करो, कहीं हमारा व्यापार दूसरों के लिए अप्रिय तो नहीं है, दूसरों के प्रति कऊ तो नहीं है। यदि शंका करना है, तो अपने ज्ञान पर करो। कहीं यह श्रद्धा से दूर तो नहीं ले जा रहा? कहीं यह आचरण से पृथक तो नहीं कर रहा? यदि शंका करना है, तो अपने जन्म के प्रति करा। कहीं यह जन्म, मृत्यु के द्वार तो नहीं खोल देगा? कहीं यह जन्म, मृत्यु से मिलन तो नहीं करा देगा? कहीं यह जन्म, मृत्यु से अनुबंधित तो नहीं है? यदि शंका करना है तो अपने चरित्र के प्रति करो। कहीं हमारा चरित्र, रावण का चरित्र तो नहीं है? कहीं हमारा चरित्र, संसार की यात्रा पर तो नहीं ले जा रहा? यदि शंका करना है, तो अपने परिवार पर करो। कहीं ये हमारा साथ छोड़ तो नहीं देगें? कहीं इनका साथ हमारे अपने अन्दर बैठे परमात्मा से मिलन करने में बाधक तो नहीं है? यदि शंका करना है, तो अपने कृत्य पर करो। कहीं हमारा कृत्य, हमारे यश को धूमिल करने वाला तो नहीं है।

लेकिन आदमी अपने पर शंका नहीं करता, स्वयं के प्रति शंका स नहीं भरता। यदि उसे अपने पर शंका हा जाये, अपने जीवन पर शंका हो जाये, अपने तन और धन पर शंका हो जाये, अपने घर-मकान पर शंका हो जाये, अपने वैभ-सम्मान पर शंका हो जाये, अपने व्यापार दुकान पर शंका हो जाये, अपने स्वाध्याय-ज्ञान पर शंका हो जाये, तो जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जायेगा। जीवन में बहुत बड़ा रूपान्तरण घटित हो जायेगा और इतनाप बड़ा परिवर्तन होगा कि आप स्वयं आश्चर्य में पड़ जायेंगे, क्योंकि सत्य से आपका परिचय हो जायेगा। सत्य से आपका साक्षात्कार हो जायेगा। दूसरों के प्रति शंका का भाव खो

जायेगा और अपने जीवन के प्रति आस्था जागेगी। अपने कल्याण की भावना पैदा होगी, आपके जीवन में वैराग्य का सागर अवतरित हो जायेगा। परमात्मा के प्रति लगन लगेगी। जिनवाणी रुचिकार प्रतीत होगी। संतों का सानिध्य अच्छा लगेगा। संत चरण में बैठना अच्छा लगेगा।

सम्यग्दर्शन का प्रवेश द्वार : नि:शंकित अंग –

और यदि आप आनन्द पाना चाहते हैं, आनन्द में समाना चाहते हैं, आनन्द में डूबना चाहते हैं, आनन्द में उतरना चाहते हैं, आनन्द को उपलब्धहोना चाहते हैं, यदि आप शाश्वत आनन्द की खोज में हैं, यदि आप शाश्वत आनन्द की तलाश में निकल पड़े हैं, तो आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी श्री रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहते हैं–

इदमेवेदृशमेव तत्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्प्यायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः॥

अर्थात् जिनोपदिष्ट तत्व यही है। इसी प्रकार ही है। न अन्य है – न अन्य प्रकार से है। इस प्रकार जिसकी तलवार की धार पर चढ़े हुये पानी की तरह अकम्प श्रद्धा है तथा सन्मार्ग में असंशय है, शंका नहीं, भय नहीं, संदेह नहीं, वह सम्यग्दर्शन के निशंकित अंग को उपलब्ध हो सकता है।

जिनेन्द्र भगवान ने सात तत्व कहे हैं, वे सात ही हैं, न कम हैं, न अधिक हैं। न छह हैं, न आठ हैं और उनका जो स्वरूप कहा है, वह वैसा ही है। न अन्य है, न अन्य प्रकार से है अथवा तत्व यानि स्वभाव। वस्तु का जो स्वभाव है, वह इसी प्रकार है। न अन्य है, न अन्य प्रकार से है। इस प्रकार वस्तु के स्वभाव को स्वभाव रूप से ही जानना तथा वस्तु के विभाव को विभाव रूप से ही जानना। उसमें किसी प्रकार की शंका नहीं करना, संदेह नहीं करना। संशय नहीं करना, संदिग्धता का भाव नहीं होना। तलवार की धार पर चढ़े हुए पानी के समान दृढ़ होना, अकम्प होना। कम्पायमान नहीं होना, दोलायमान नहीं होना और सन्मार्ग में, मोक्षमार्ग में संशय रहित होना, साहस सहित होना, भय मुक्त होना, निर्भयता युक्त होना। यह सम्यग्दर्शन का प्रथम निशंकित अंग है ओर यह प्रथम निशंकित अंग सम्यग्दर्शन रूपी महल का प्रथम प्रवेश द्वार है।

जहाँ मोक्षमार्ग की उपलब्धि में सम्यग्दर्शन प्राथमिक आवश्यकता है, वहीं सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निशंकित अंग प्राथमिक प्रवेश द्वार है। जैसे सम्यग्दर्शन के उपलब्ध हुये बिना मोक्षमार्ग नहीं बनता, मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं होता, उसी प्रकार निशंकित अंग को उपलब्ध हुये बिना सम्यग्दर्शन में प्रवेश नहीं होता।

सम्यग्दर्शन का प्रारंभ नहीं होता, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती–

आचार्यां ने सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं। उनमें से प्रथम अंग का नाम है – निशंकित अंग। यह सम्यग्दर्शन का प्रवेश द्वार है। जब तक प्रवेश द्वार को हम उपलब्ध न होंगे, जब तक प्रवेश द्वार से हमारा प्रवेश न होगा, तब तक हम आगे के द्वारों तक पहुँच भी नहीं सकते। यदि हमारा प्रवेश द्वार ही बंद हो तो आगे के द्वारों की उपलब्धि कतई संभव नहीं है। निशंकित अंग सम्यग्दर्शन की प्रथम सीढ़ी है, प्रथम सोपान है।

कोई महावीर ही कर सकता है प्रवेश –

नि:शंक्ति का अर्थ है – शंका से मुक्त हो जाना, शंका से रिक्त हो जाना, शंका रहित हो जाना, शंका की सैर नहीं करना। शंका का कचरा निकाल देना।

शंका यानि एक ऐसा तूफान जिसमें सर्वसय खो जाने का डर है। जो हमारे बढ़ते रहित कदमों के लिये जंजीर है, जो हमारे गन्तव्य के लिये रूकावट है।

शंका यानि एक ऐसी नदी, जिसमें सब कुछ बहा ले जाने का भाव उमड़ रहा है, जो अपने पूरे उफान पर है।

शंका यानि दुर्धर घाटी जिसमें प्रवेश करने पर निकलना मुश्किल है, जिसमें प्रवेश करने पर रास्ता खो जाता है, जान मुश्किल में पड़ जाती है।

इस सम्यग्दर्शन के प्रवेश द्वार निशंकित अंग को प्राप्त करना बड़ा कठिन है। इसकी उपलब्धि कोई महावीर ही कर सकता है, अर्थात् जो मार्ग के प्रति निर्भय हो, निडर हो। तत्व के प्रति निशंक हो, निसंदेह हो। ऐसी महावीर सी निर्भय, निशंक श्रद्धा ही इस द्वार में प्रवेश करा सकती है।

सच तो ये है इस द्वार में प्रवश करना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं। कठिन इसलिये है, क्योंकि मार्ग में शंका की नागिन आपकी श्रद्धा को डसने के लिये घूम रही होगी। शंका के बिच्छू अपना डंक उठाये तुम्हारी खोज में होंगे। शंका के डांस-मच्छर तुम्हें काटने वे लिये पंख फड़-फड़ा रहे होगें। शंका के खटमल तुम्हारा खून चूसने के लिये आतुर होंगे। शंका की घास तुम्हारे कदमों को रोकने के लिये आतुर होंगे। शंका की दीमक श्रद्धाको खोने के विचार में होगी। शंका का भेड़िया तुम्हारी ओर दौड़ेगा, शंका के जंगली कुत्ते तुम्हें चारों ओर से घेर लेंगे और आप सोचेंगे शायद हम गलत रास्ते पर हैं, गलत मार्ग पर

हैं। इन कठिनाईयों के मिलन होनेसे आपको मार्ग के प्रति भ, मार्ग के प्रति शंका हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती। यदि आपको मार्ग के प्रति भय, मार्ग के प्रति शंका हा जाती है, तो आपके लिये इस प्रवेश द्वार में प्रवेश कठिन है, क्योंकि इस द्वार में प्रवेश करने की प्रथम शर्त यह है कि जो मार्ग के प्रति निर्भय निशंक होकर आया हो।

कहीं कुत्ता जाग गया तो...

और सच तो ये है कि जहाँ शंका और भय हमारे सहयोगी हों, वहाँ यात्रा तय नहीं की जा सकती। क्योंकि शंका रुकायेगी, भय लौटायेगा। शंका के आते ही गतिशील कद रुक जाते हैं, भय के आते ही आप लौटने को राजी हो जाते हैं। और भय सिर्फ लौटाता ही नहीं, अपितु भय तेजी से भगाता है।

शायद आपने कभी विचार किया हो – जब आप रास्ते पर होते हैं, मार्ग पर होते हैं। हँसते-मुस्कराते हुये जा रहे होते हैं, जब आप किसी शंका से घिरे नहीं होते, इसलिये बढ़ते चले जाते हैं और यदि थोड़ा आग बढ़ने पर आपको रास्ते मूं सोता हुआ या बैठा हुआ कुत्ता दिखाई दे जाता है, तो आपकी मुस्कराहट खो जाती है, कदम रुक जाते हैं, पैर ठिठक जाते है क्योंकि आप शंका से भर जाते हैं। आपको शंका है, हम आगे बढ़े और कहीं कुत्ता जाग गया तो.....। हम आगे बढ़े और कहीं कुत्ता भैंकने लगा तो.....। हम आगे बढ़े और कहीं कुत्ते ने काट लिया तो.....। और यही शंका आपको आगे नहीं बढ़ने देती।

अब हो सकता है, कुत्ता शांत प्रकृति का हो। आपके बढ़ने पर कुत्ता कुछ भी ध्यान न दे, आप बढ़ें और कुत्ता न जागे। आप बढ़ें और कुत्ता न भौंके। आप बढ़ें और कुत्ता नक काटे। आपके पीछ न दाड़े। लेकिन जो आपके अंदर शंका का कुत्ता है, वह तो जाग ही गया है। आपके अंदर जो शंका का कुत्ता है, वह तो भौंकने ही लगा है। आपके अंदर जा शंका का कुत्ता है उसने तो काट ही लिया है। और जब शंका का कुत्ता जाग जाता है, शंका का कुत्ता भौंकने लगता है, शंका का कुत्ता काट लेता है, तो आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है। इस जाता है। इसलिये ख्याल रहे, बाहर का कुत्ता जितना खतरनाक नहीं उससे भी ज्यादा खतरनाक अंदर का कुत्ता होता है। यानि शंका का कुत्ता ज्यादा खतरनाक साबित होता है। कदम भी बाहर के कुत्ते ने नहीं रोके, अपितु अंदर जो शंका का कुत्ता है उसके कारण रुके हैं। और शंका के आते ही भय भी अपना करिशमा दिखाता है। अभी कदम रुके हैं, लौटे नहीं, मुड़े नहीं। भय कहेगा – बच्चू लौट लो। अभी गनीमत है कि तुम्हीं ने कुत्ते को देखा है, कुत्ते ने तुम्हें नहीं देखा और यदि कुत्ते

ने तुम्हे देख लिया तो समझो खैर नहीं, लौटना मुश्किल हो जायेगा। इतना विचार कते ही आपके कदम मुड़ जाते हैं और फिर मुड़ते ही नहीं, मुड़कर दो-चार कदम बढ़ जाते हैं। फिर आपको पुनः ख्याल आता है, कहीं कुत्ता जागा तो नहीं। और आप अपने मुड़े हुये कदमों से, मुड़कर बढ़े हुये कदमों से पुनः पीछे देखते हैं। यदि इसी समय कुत्ते ने अपनी पूँद हिला दी, तो यूँ समझो कि आप तेजी से 10-12 कदम आग बढ़ जाते हैं। फिर आप पुनः कुत्ते को देखते है।। यदि कुत्ता उठकर खड़ा हो गया और उसने अपना मुख आपकी दिशा में कर लिया तो आपका पता नहीं चलता, आप किस गली में हैं, किस मकान में अथवा आप कब अपने घर आ गये। इसका भी पता नहीं चलता।

इसीलिये हमने आपको बतलाया था कि शंका में सिर्फ कदम रुकते हैं, लेकिन भय के आते ही रुके हुयशे कदम मुड़ जाते हैं और तेजी से भागते हैं।

इसलिये आपके जीवन में ''तो'8 जग गया है, ''तो का भाव खड़ा हो गया है, इसका अर्थ है आपनी सफलताओं को खो दिया है। सफलता का द्वार निगलेक्ट कर दिया है, क्योंकि साहसहीन ''तो'' सफलताओं पर प्रश्न चिन्ह लगा देगा और कितने ही बार आपने इस कारण असफलता पाई है। आप सोचते हैं, दुकान खोली और न चली तो? कुंआ खोदा और पानी न निकला तो? कुंए में लोटा डाला और पानी न निकला तो? पानी पिया, प्यास नहीं बुझी तो? दवाई ली, रोग नहीं मिटा तो? ज्योति जलाई प्रकाश न मिला तो? आग जलाई, गर्मी न मिली तो? पंखा चलाया, हवा न मिली तो? वृक्ष लगाया, फूल न खिला तो? फूल खिलाया, सुगन्ध न मिली तो? आम सूंघा, सुगन्ध न मिली तो? साधना की, सत्य न मिला तो? चारित्र जगाया, परमात्मा न मिला तो? पति का संयोग किया, पुत्र पैदा न हुआ तो? पानी बरसाया, जमीन गीली न हई तो?

यह साहसहीन ''तो'' सफलताओं पर अंकुश लगाता है, असफल कराता है, गिराता है, पतित करता है, मूर्छित करता है, बेहोश करता है, विक्षिप्त करता है। यह ''तो'' जीवन बोध नहीं जीवन विरोध का भाव है। यह ''तो'' सिर्फ तोड़ता है – स्वयं से स्वयं की सफलताओं से, सत्य मार्ग से, उपलब्धियों से, स्वयं की संभावनाओं से।

इसलिए मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ, कि ''साहसहीन तो'8 सिर्फ तोड़ता है, सिर्फ तौहीन करता है, इसलियशे इस ''तो'' से आप ताँबा कर लेना। स्व्यं को जुदा कर लेना। ''तो'' को विदा कर देना, किन्तु भूलकर भी इस ''तो'' पर फिदा मत होना।

हाँ, यदि ''तो'' का भाव ही जगाना है, तो अपनी अक्षमता, अपनी

असफलताओं पर जगाना। वह ''साहसवान तो'' द्वार में प्रवेश करा देगा, उपलब्धियों से परिचय करना है, तो चाहिये, तो पति का संयोग करना पड़ेगा अर्थात् चारित्र है, तो परमात्मा उपलब्धि होगी। फूल खिला तो सुगंध मिलेगी, वृक्ष लगाया तो फूल मिलेंगे। दवाई ली तो रोग मिटेगा, कुँआ खोदा तो पानी निकलेगा, आग जलाओगे तो गर्मी मिलेगी।

यह ''तो'' आपके जीवन की संभावनाओं को प्रकट करता है, स्व्यं की क्षमताओं से परिचय कराता है, सफलता का पक्ष दर्शाता है, भय से मुक्त साहस की यात्रा कराता है, मार्ग के प्रति निर्भय, निशंक बनाता हुआ, गंतव्य की ओर ले जाता है।

भय का भूत –

और मजे की बात तो ये है कि सम्यग्दर्शन की उपलब्धि में बाहर का मार्ग कार्यकारी न होगा, अपितु भीतर का, अन्दर का मार्ग ही द्वार में प्रवेश करा सकता है। बाहर की रुकावटें, बाहर की बाधायें, बाहर की परेशालियाँ भी इस उपलब्धि को रोकने में लागू न होंगी। और यह मार्ग भी अदर का है, और मंजिल भी अंदर की है, इसलिए बाहर का कुत्ता तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। बाहर के साँप, बिच्छू भी तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बन सकते। परन्तु यदि शंका का कुत्ता जो अन्दर जागता है, यदि वह जाग गया तो मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा। रास्ता बन्द हो जायेगा और भय का भूत आपकी बुद्धि पर आक्रमण कर देगा, इसलिए मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ, कि ''निशंक श्रद्धा को उपलब्ध होने के लिए कभी शंका का स्वागत नहीं करना, अन्यथा भय का भूत आपके सिर पर बैठ जायेगा।''

मैंने सुना है, मुंगेरीलाल को तंत्र-मंत्र का चस्का लग गया। वे अपने आपको तांत्रिक घोषित करना चाहते थे, लेकिन कोई भी आदमी उन्हें तांत्रिक मानने के लिए राजी न था। वे जहाँ भी जाते, वहाँ उनकी प्रतिष्ठा बुद्धू और भोंदू नाम से बन जाती। फिर भी उन्होंने अपने नाम के साथ महातात्रिक उपाधि को जोड़ रखा था। मुंगेरीलाल को कभी कोई प्रचारक न मिला, इसलिए वे स्वयं अपने प्रचारक बनकर दुनिया में घूमन लगे।

किसी नगर में मुंगेरीलाल ने अपना अच्छा खासा ताम-झाम जाम रखा था, खूब पूजा-प्रतिष्ठा मिल रही थी। इसी नगर में रामलाल नाम का एक आदमी था। उसने सोचा इनकी परीक्षा लेनी चाहिए। नगर के बाहर समीप में एक बंगला था, जा आस-पास के इलाके में भू-बंगला के नाम से चर्चित था, हर आदमी उसे भूत-बंगला ही कहता था। रामलाल ने मुंगेरीलाल को इस विषय की

जानकारी दे दी और कहा – आज की रात ठीक 12 बजे आपको भूत-बंगला में जाना है, वहाँ सबसे भीतरी कोठरी में यह लकड़ी का खूँटा ठोककर आना है। आप जैसे तांत्रिक के लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं। मुंगेरीलाल ने भूत-बंगला नाम सुना तो चेहरे पर पसीना छलक आया, लेकिन करते भी क्या – आखिर प्रतिष्ठा का सवाल था। मुंगेरीलाल न शुक्रवार की रात ठी 12 बजे भूत-बंगला में जाने की घोषण कर दी।

रामलाल ने भी बैण्ड बाजों के साथ मुंगेरीलाल को भूत-बंगला के द्वार तक पहुँचाया। बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हुये थे। सभी के हाथ में फूलों की माला थीं, जो मुंगेरीलाल को पहनाई जा रही थीं। हा आदमी रामलाल की सराहना की रहा था। उसका कारण था कि रामलाल ने सभी को यही सूचना दी थी, कि मुंगेरीलाल को हम उनकी अद्‌भूत प्रतिभा से प्रभावित होकर अपने पिता के द्वारा बनाये बंगले को भेट कर रहे हैं। उनका शुक्रवार की रात 12 बजे शुभ मुहूर्त में मंगल प्रवेश होगा। इस बात का मुंगेरीलाल को कुछ पता न था। रामलल के साथ सभी ने मुंगेरीलाल को शुभकामनाएँ दीं और मंगल प्रवेश का शुभ मुहूर्त आ गया है, इस बात से अवगत कराया। मुंगेरीलाल ने ठी 12 बजे भूत-बंगला में प्रवेश किया, अन्दर जाकर देखा तो घुप्प अंधेरा था। प्रवेश करते ही अंधकार से मिलन हो गया, आगे बढ़ना मुश्किल था। अतः मुंगेरीलाल वहीं बैठ गये। मन में विचार आया, क्यों न खूँटा यहीं गाड़ दिया जाए और वहीं पर खूँटा गाड़ना प्रारंभ कर दिया। खट-खट की आवाज बंगले में गूँजी। मुंगेरीलाल ने सोचा-शायद कोई अदृश्य शक्ति प्रतियोगिता कर रही है। शंका मन में प्रवेश कर गई उन्होंने खूँटे को शीघ्रता से गाड़ने के लिए हथौड़े की ठोकर लगाई। जितनी शीघ्रता से हथौड़े चल रहा था, उतनी ही शीघ्रता से अदृश्य शक्ति का हथौड़ा भी चल रहा था। यानि मुंगेरीलाल ने सोचा – निश्चिय ही कोई अदृश्य शक्ति इस बंगले में है। और तभी खूँटे को गड़ा हुआ जानकर मुंगेरीलाल ने तेजी से बाहर की ओर दौड़ लगाई, क्योंकि शंका के आत ही भय का आगममन हो जाता है और भय सदैव भगाता है। मुंगेरी दौड़ और वहीं गिर पड़े। फिर उठे, दौड़े और वहीं फिर गिर पड़े। मुंगेरीलाल ने सोच – अदृश्य शक्ति अभी तक तो मुझसे प्रतियोगिता कर रही थी, लेकिन लगता है अब उसने मुझे पकड़ लिया है। भूत ने मुझे पकड़ लिया है। मुंगेरीलाल जोर से चिल्लाये – बचाओ-अचाओ, भूत-भूत.....।

बाहर रामलाल खड़े हुये थे। अन्य लोग भी बाहर खुशियाँ मना रहे थे। जैसे ही अन्दर से आवाज सुनी, सभी लोग अन्दरपहुँचे। लाईट ऑन की। देखा तो मुंगेरीलाल भूत-भूत-भूत चिल्ला रहे थे। रामलाल ने कहा – अरे हमें तो कोई

भूत नजर नहीं आ रहा। मुंगेरीलाल ने कहा – उसने मुझे पकड़ लिया है, वह मुझे छोड़ ही नहीं रहा। और जैसे मुंगेरीलाल उठकर भागे कि फिर वहीं गिर पड़े। जितने लोग थे – सारे ठहाका मार कर हँसने लगे। सभी को हँसता हुआ देख मुंगेरीलाल थोड़ा संभले, शांत हुये। तब रामलाल ने कहा – मुंगेरीलाल तुम्हें भूत ने नहीं, तुम्हारे खूँटे ने पकड़ लिया है। जेसे ही मुंगेरीलाल ने उस ओर देखा तो पाया कि कुर्त्ता का एक छोर खूँटे से जमीन में दबा हुआ है। मुंगेरीलाल शर्म से पानी-पानी हो गये। आगे क्या हुआ पता नहीं। कहने का तात्पर्य यही है, कि जहाँ शंका का आगमन होता है, तो भय भी जीवन में प्रवेश कर जाता है, भय का भूत सिर पर बैठ जाता है। मुंगेरीलाल शर्म से पानी-पानी हो गये। आगे क्या हुआ पता नहीं।

कहने का तात्पर्य यही है, कि जहाँ शंका का आगमन होता है, तो भय भी जीवन में प्रवेश कर जाता है, भय का भूत सिर पर बैठ जाता है। मुंगेरीलाल के सामने भूत नहीं था, सिर्फ भय का भूत था, इसलिए शंका और भय हमारी अंतरंग की यात्रा में असहयोगी होते हैं, कभी सहयोगी नहीं होते। अतः निशंक्ति अंग के द्वार में प्रवेश करने के लिए शंका और भय को बाहर ही छोड़कर जाना। अन्यथा द्वार में प्रवेश न हो सकेगा। द्वार में प्रवेश होना कठिन हो जायेगा।

निशंक, निर्णय : महावीर –

और अभी हमने आपको बतलाया था, कि द्वार में प्रवश कठिन है लेकिन असंभव नहीं। असंभव इसलिए नहीं, क्योंकि इस द्वार में अनंतानंत भव्य आत्माओं ने प्रवेश किया है। आदिनाथ ने प्रवेश किया, चंदाप्रभु ने प्रवेश किया, शांतिनाथ ने प्रवेश किया, पार्श्वनाथ ने प्रवेश किया, नेमिनाथ ने प्रवेश किया, महावीर ने प्रवेश किया और मजे की बात तो यह है कि इस द्वार में प्रवेश किए बिना कभी सिद्धत्व की उपलब्धि नहीं होती और न ही तीर्थंकरत्व का जन्म होता है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति के बंध के लिए निशंक होना, निर्भय होना प्राथमिक पात्रता है। बिना दर्शनविशुद्धि के तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता, इसलिए महावीर सी निशंक दृष्टि ही इस द्वार में प्रवेश करा सकती है। क्योंकि महावीर के जीवन में शंका को कभी पनाह नहीं मिली। महावीर कभी शंका को उपलब्ध नहीं हुये। महावीर का शैशवकाल ही निशंक होने की सूचना देता है।

मैंने सुना है – जब तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ, जब तीर्थंकर महावीर का इस धरती पर अवतरण हुआ तो स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र का आसन कंपायमान होने लगा ओर यह कोई महावीर के जन्म होने पर ही घटना नहीं घटी, अपितु

जितने भी तीर्थंकर जन्म लेते हैं, सभी के जन्म के समय यही घटना घटित हुआ करती है।

तो जैसे ही सौधर्म इन्द्र का आसन कंपायमान हुआ, उसने अपने अवधि ज्ञान से जाना कि भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड के वैशाली नगरी में अंति तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ है। तुरनत ही सात कदम बढ़कर नमस्कार किया ओर जन्म-कल्यायक मनाने के लिए अपनी इंद्राणी शची के साथ आया। शची ने वैशाली के राजभवन में प्रवेश किया और बालक महावीर को अपने हाथों में लेकर निहारने लगी। हृदय अन्यन्त पुलकित था। तभी जन्माभिषेक का ख्याल आया और माता के पास एक मायामयी बाल लिटाकर महावीर को लाकर इन्द्र को सौंप दिया सौधर्म इन्द्र की खुशी का ठिकाना न था। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर सौधर्म इन्द्र जन्माभिषेक के लिए सुमेरु पर्वत पर ले गये। सभी देवी-देवता नाना प्रकार के नृत्य कर रहे थे। नाना प्रकार के गीत गाये जा रहे थे, नाना प्रकार के बाद्य यंत्र बजाये जा रहे थे। नवजात शिशु महावीर के जन्माभिषेक की पूर्ण तेयारी हो चुकी थी। क्षीर सागर का निर्मल जल कलशों के द्वारा लाया जा चुका था। सौधर्म इन्द्र अपने हाथों में उस विशाल कलश को लिये खड़ा हो गया।

तभी सौधर्म इन्द्र के मन में विचार आया – कलश बड़ा है, कलश विशाल है, और बालक का शरीर छोटा है, और इतना छोआ है कि ऐसे हजारों बालक इस कलश में आराम से बिठाये जा सकते हैं। कहीं ऐसा नह हो इतने विशाल कलशों के अभिषेक से यह नवजात शिशु क्षीर जल में ही बह जाये। सौधर्म इन्द्र इस शंका से भर चुका था, अत: कलश तो थे, पर कलशाभिषेक नहीं हो रहा था। सर्व देवतागण सोच रहे थे, इन्द्र अब अभिषेक करेगा। अब अभिषेक करेगा। लेकिन इन्द्र इसी सोच में डूबा था-यदि नवजात शिशु बह गया, तो हमारी बदनामी होगी। अत: अपनी विक्रिया शक्ति से महावीर को संभालना उचिता होगा। शंका गहराती जा रही थी।

सौधर्म इन्द्र शंका से घिर चुका था, पर बालक महावीर निशंक थे। जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी थे। महावीर ने सोचा आखिर कारण क्या है? बात क्या है? सौधर्म इन्द्र ने अभी तक जन्माभिषेक क्रिया प्रारंभ क्यों नहीं की? अपने निर्मलज्ञान से जाना तो पता चला-अच्छा? इन्द्र इस शंका के झूले में झूल रहा है। और तीर्थंकर शक्ति को भूल रहा है। नवजात शिशु ने तुरन्त अपने सुकोमत अंगूठे से सुमेरु पर्वत को स्पर्श किया। तीर्थंकर बालक के स्पर्श से पर्वत कम्पायमान हो गया। सौधर्म इन्द्र कम्पायमान हो गया, सभी देवतागण आश्चर्य से भर गये। तभी सौधर्म इन्द्र बालक को सर्व शक्तिशाली जानकर निशंक हो गया

और जय-जयकार करते हुये बालक का जन्माभिषेक किया और महवीर नाम रखा।

शंका जहाँ भी होती है, अनर्थकारी होती है –

तो महावीर जितने शक्तिशाली थे, उतनी ही उनकी निशंकता भी शक्तिशाली थी और इस द्वार में प्रवेश करने के लिए इस द्वार पें प्रवेश पाने के लिए हमें भी महावीर सी निशंकता जगाना पड़ेगी, महावीर सी निर्भयता पैदा करना होगी। यदि महावीर सी निशंक भावना हमारे अन्दर भी अवतरित हो जावे तो इस द्वार में प्रवेश असंभव भी नहीं है, इस्पोसीबिल भी नहीं है। इसलिए ख्याल रहे शंका में सुख नहीं दुख है, आनन्द नहीं पीड़ा है, खुशी नहीं क्लेश है, पाना नहीं खोना है, उठना नहीं गिरना है। शंका समझ के ऊपर प्रहार, नासमझी का अवतार है। शंका बुद्धि का विलाप, अशुद्धि का मिलाप है।

सौधर्म इन्द्र ने शंका की तो आनन्द से वंचित रहना पड़ा। जो प्राप्ति पहले होना थी, उससे दूर रह गया। इसलिए मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ, कि शंका से वाय-वाय कर लेना। शंका आये तो टाटा कर लेना। शंका आये तो फिर मिलंगे, बोल ही देना। क्योंकि शंका आपके आनन्द को छीन लेगी। शंका आये तो ''अभी टाइम नहीं है'' कह देना, जिससे आपका जीवन अमरत्व के शिखर को पा सके। आपका जीवन सत्य के द्वार से शिवत्व को उपलब्ध हो सके।

आज तक हमने एक ही गलती तो की है। शंका आई तो ''नमस्ते जी'' कह दिया। शंका आई तो ''हाय-हैलो'' कह दिया। शंका आई तो ''आइये'' जी कह दिया। शंका आई तो कृपया बैठिये कह दिया। शंका आई तो ''अंदर तशरीफ लाइये जी'' कह दिया। और यह गलती हमारी सदियों से चल रही है, युगों-युगों से चल रही है। शंका का बुलावा, श्रद्धा का छलावा है। शंका का मिलन, अग्नि का मिलन है, मृत्यु का आलिंगन है। शंका ने आज तक किसको नहीं मिटाया शंका ने आज तक किसका चैन नहीं छीना और शंका जहाँ भी होती है, कष्टप्रद ही होती है। शंका जहाँ भी होतीं है अनर्थकारी ही होती है। चाहे घर में हो या परिवार में, मुहल्ले में हो या समाज में, राजनीति में हो या धर्मनीति में। शंका हर दम, हर समय अनर्थ करने को आतुर रहती है, उत्सुक रहती है, शंका हर पल सुखद जीवन में दु:खों की नागफनी पैदा करती है।

प्रेम भाई-भाई का –

मैंने सुना है-एक परिवार में एक माँ रहती थी। उके दो जुड़वाँ बच्चे थे।

वह माँ बहुत भोली थी। सीधी-सीदी थी, अनपढ़ थी, कभी स्कूल का मुँह नहीं देखा था। परिवार में तीनों प्राणी अपने जीवन का सुख-पूर्वक निर्वाह कर रहे थे। उस माँ ने अपने दोनों बच्चें का स्कू में दाखिला करा दिया। चूँकि दानों बच्चे जुड़वाँ थे, अत: उनके चेहरे, नैन-नक्स एक जैसे थे। गाँव के लोग भी दोनों बच्चों को बेहद प्यार करते थे। धीरे-धीरे बच्चे बड़ हुए और माँ वृद्ध हुई दोनों बच्चों में पहला बड़ा लड़का पढ़ाई में कमजोर था। छोटा लड़का तेज बुद्धि का था। प्रखर प्रज्ञा वाला था। गाँव के एक स्कूल में दोनों ने एक साथ अध्ययन किया। आगे विद्या का साधन न होने से माँ ने दोनों लड़को की खेती बाड़ी का काम करने के लिये व अपने जीवन निर्वाह के लिए घर पर रखना उचित समझा। जब पड़ौस के लोगों को इस बात का पता चला तो उन्होंने उस वृद्ध माँ को समझाया—माँ जी आपको अपने लड़के को थोड़ा और पढ़ाना चाहिए। तब माँ ने कहा यहाँ पर आगे पढ़ने के साधन तो हैं ही नहीं। तब पड़ौसी ने कहा—तो क्या हुआ। इन्हें पास के ही शहर में दाखिला दिला दो। तब माँ ने कहा यहाँ यहाँ घर का र्या खेती-बाढ़ी का कार्य कौन देखेगो? अंत मे चूँकि बड़ा लड़का कमजोर बुद्धि का था। उसे खेती के कार्य में रुचि थी अत: उसे माँ ने खेती का कार्य सौंप दिया और प्रखर बुद्धि वाले दोटे लड़के को शहर पढ़ने भेज दिया। बड़ा लड़का भी इससे काफी खुश था। धीरे-धीरे समय गुजरता गया दानों ाााई अब तक बड़े हो चुके थे, जवान हो चुके थे। माँ भी 60 को पार कर चुकी थी, अत: लड़के की शादी के विषय में विचार किया। बड़े लड़के की शादी की तारीख तय हो गई।

चूँकि बड़ा भाई अपेन छोटे भाई को बहुत चाहता था, अति स्नेह करता था, दानों में बड़ा प्रेम था। अत: समाचार वह अपने छोटे भाई को देनो शहर गया। शहर में भाई से मिलकर उसे बड़ी खुशी हुई। शुभ समाचार देकर जब वह वापस अपने गाँव लौट रहा था, कि शहर के फुटपाथ पर उसने एक वस्तु देखी जो उसे बहुत अच्छी लगी। जैसे ही उसने उसे देखा, तो लगा कि अरे यह तो मेरे छोटे भाई की फोटो है। लगता है हमारा भाई यहाँ पर बहुत प्रसिद्ध हो गया है, तभी तो उसकी फोटो यहाँ पर दुकान पर रखी है। उसने उस वस्तु को दुकान से खरीदा ओर घर ले आया। चूँकि छोटे भाई से बहुत स्नेह था इसलिये उस वस्तु को अपने तकिया के नीचे रख लिया। रोज सुबह उठता तो सबसे पहले उस वस्तु को देखता। गौर से देखता फिर चूमता और वापिस तकिया के नीच रख खेत पर चला जाता। जब दिन भर का थका-मांदा अपने घर आता तो सबसे पहले उस वस्तु को देखता फिर हौले से चूमता और वापिस तकिया के नीचे रख देता। अब तो यह उसका दैनिक कम ही बन गया। आखिर प्रेम जो था अपने छोटे भाई से।

शादी और मिलन की रात –

धीरे-धीरे वही समय भी आ गया। जबकि उसकी शादी होना थी। छोटे भाई का इंतजार था। लेकिन पता चला-उसकी परीक्षायें चल रही हैं अत: वह शादी में उपस्थित न हो सकेगा। शुभमुहूर्त में उस बड़े भाई की शादी हो गई। दुल्हन घर पर आ चुकी थी। सारे मुहल्ले में खुशी की बदलियां छाई थी। हर कोई दुल्हन को देखकर कह रह था। इस वृद्ध माँ को तो चाँद का टुकड़ा मिला है, चाँद का टुकड़ा। तो कोई कहती थी साक्षात लक्ष्मी आई है, लक्ष्मी। माँ भी खुश थी, बेटा भी खुश था।

वृद्धा माँ, बेटे और बहू ने साल दिन तक तीर्थयात्रा की। तदुपरात्न अपने गांव लौट आये। माँ अपनी बहू का पूरा ख्याल रखती थीं, उसे कोई परेशानी नहीं होने देती। कोई काम भी न करने देती। बेटी की तरह अपनी बहू को चाहती थी। बहू भी अपनी सासू को सासू कम, माँ अधिक समझती थी। बहू अत्यन्त खुश थी, ऐसी सूास माँ को पाकर।

सुबह का वक्त था। लड़का खेत पर जाने की तैयारी कर रहा था। सुबह का नाश्ता कर वह अपने कमरे में गया तकिया के नीचे से अपनी प्रिय वसतु निकाली, गौर से देखा, हौले से चुम्बन किलया और अपने काम पर निकल गया। उस कार्य को करते हये उसकी नव विवाहित पत्नी दे देख लिया लेकिन चूँकि वह उस समय माँ के पास थी, अत: उस विषय में विषय जानकारी न कर सकी।

संध्या का समय था। यूँ तो संध्या रोज आती थी, रात भी रोज घिरती थी परन्तु नव विवाहित के जीवन की यह प्रथम रात थी, जब पति की खुशियाँ उसकी झोली में बरसना थी, सच तो ये है कि नव विवाहित के आज सौभाग्य की रात थी। मधुर मिलन की रात थीं, आपसी प्रेम के अतिरेक की रात थी।। उस सुखद मिलन की विचारधारा में खोई नव विवाहिता पत्नी अपने कमरे में गई और पति का इंतजार करने लगी।

मन ही मन पति से बात करके खुश हो रही थी। पति मिलन का विचार ही रोमांच कर रहा था। इसी धु में खोई वह पति के आगमन के लिये सेज पर बिछे कालीन की सलवटें दूर करने लगी। सेज की सिलवटें तो दूर हो गई, लेकिन जब तकिन के नीच रखी हुई वस्तु पर नजर पड़ी और उसे उठाकर देखा, तो चेहरा फक हो गया, चेहरा सफेद हो यगा। सारे सपने ध्वस्त हो गये, मधुर मिलन की तमन्ना चूर-चूर हो गई सौभाग्य की रात, सुहाग की रात में सिलवटें

ही सिलवटें बिछ गई। आँखों में आँसू आ गये। पैरों के नीचे से मानों जमीन खिसक गई, अरजू का महल खण्डर हो गया। नव विवाहिता को अपना जीवन नीरस महसूस होने लगा। अभी तक तो प्रेम का संदेश लेकर पति के इंतजार में बैठी थी। पर अब तो फुफकारती नागिन की तरह उस बिस्तर पर जा पड़ी।

उधर पति को भी अपनी नव विवाहित पत्नी से मिलन की उत्कंठा थी। उसको प्रेम पाश में बांधने की तीव्र लालसा थी। उसके प्यार में खो जाने की पुलक थी। अत: पत्नी इंतजार कर रही होगी, ऐसी भावना से वह आज कुछ जल्दी ही खेत से लौट आया। सोच रहा था, मै पहुँचूँगा तो पत्नी दौड़कर आयेगी, मधुर मुस्कान से अभिवादन करेगी।

पत्नी के आते ही, माँ शक के घेरे में –

लेकिन जैसे ही वह घर पहुँचा ऐसी कोई घटना न घटी। ऐसा कुछ भी व्यवहार नहीं हुआ। माँ के पास खाना खाकर वह अपनी प्रिया सेमिलने गया। जाकर देखा तो अज्ब नजारा था। न चेहरे पर मुस्कान थी, न आँखों में पति दर्शन की अभिलाषा, न आँखों में खुशी। पतिदेव ने नव विवाहित पत्नी के घूँघट को उठाया, तो आँसुओं से बोझिल आँचों से नीर वह चला और वह फफक-फफक कर रोने लगी। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि आखिर बात क्या हो गई? उसने अपनी नव विवाहित पत्नी को सांत्वना देते हुये कहा-प्रिय क्या बात है? जो भी हो निस्संकोच कहो। मैं उसका निवारण करने का जरूर प्रयास करूँगा। वह पत्नी को जितना समझाता पत्नी उतनी ही तीव्रता से रो रही थी। पत्नी की स्थिति देखकर उसे भी दु:ख था, पीड़ा थी। लेकिन करता भी क्या? कारण पता चले तो निवारण का रास्ता खोजा जा सकता था। कारण ही पता न था। उसने पुन: समझाते हुये कहा-क्या किसी ने कुछ बोल दिया था। उसने अपनी पत्नी को सात्वना देते हुये कहा-कि क्या माँ जी ने कुछ कह दिया है? अक्सर आदमी के जीवन में यह सोच उतराने लगती है। जब पत्नी आ जाती है और पत्नी को दु:ख है, पीड़ा है तो अक्सर यही सोचता है कि माँ ने कुछ कह दिया होगा। पत्नी के आते ही माँ शक के घेरे में आ जाती है। पत्नी मुख से कुछ भी न बोली। पति भी पत्नी को दु:खी देख विचार मग्न हो गया। आज सुबह तक सब ठीक था पर अभी-अभी क्या हो गया? उसने माँ को बुलाया और माँ से पूछा- मां जी आज कोई बात हो गई है क्या? माँ ने कहा नहीं तो बेटा अभी-अभी तो बहू हमारे पास से खुश होकर आई थी।

माँ ने भी बहू को समझाया और पूछा बेटा क्या बात है? तू मुझे बतला

दे। जो भी होगा मैं तेरी परेशानी को हल करूँगी, लेकिन बहू ने कुछ भी नहीं कहा। चुपचाप आँखों से आंसू बहाती रही और अपने भाग्य, और किस्मत को उलाहना देती रही।

बूढ़ी है जल्दी मर जायेगी-

दूसरे दिन पति खेत परा काम चला गया, इधर बहू फिर प्रारंभ हो गया। माँ आई, और सिर पर हाथ फेरते हुये, अहू का सिर अपनी गोदी में रख लिया। आज तो बतलाना ही पड़ेगा क्या बात है? मैं तुझे इस तरह रोते हुये नहीं देख सकती। आखिर सासू माँ के प्यारा ने बहू को बोलने पर मजबूर कर दिया। धीरे-धीरे बहू ने हकलाते हुये और सिसकते हुये कहा- माँ जी आपके बेटे ने मुझसे शादी का नाटक किया है। मुझे धोखा दिया है। माँ ने सुना तो अवाक् रह गई। बहू के शब्दों ने माँ को स्तब्ध कर दिया- क्या कहती हो बेटा?

हाँ माँ- मैं सच कह रही हूँ, वह हम से प्यार नही करते किसी और से प्यार करते हैं। इतना कह वह पुन: अश्रुपात करने लगी। माँ ने कहा नहीं बेटा, नहीं। ऐसा हो नहीं सकता। मेरा बेटा ऐसा नहीं है। मैं उसे बहुत अच्छे से जानती हूँ। बेटे को माँ ने ज्यादा कोई नहीं जान सकता। मेरा बेटा सुशील है।

और यदि तू कहती है, तो आने दो बेटे को पूछ लेती हूँ। अब तू शांत हो जा, तू अपने को दु:खी मत कर। माँ ने समझा बुझाकर शांत कर दिया। शाम को बेटा आया, तो माँ ने कहा बेटा मैं नहीं समझती थी कि तू अपने चरित्र से गिर गया है। तूने मूझे पहले क्यों नही बताया? माँ के शब्द बेटे को कुछ भी समझ में नहीं आ रहे थे-क्या बात है माँ? यह तुम क्या कह रही हो मैं अपने चरित्र से कैसे गिर सकता हूँ? माँ ने कहा तुम किसी और को प्यार करते थे तो फिर शादी क्यों की? बेटे ने कहा नहीं माँ ऐसी कोई बात नहीं है। माँ जानती थी मेरे बेटे में ऐसी चरित्रहीनता है ही नहीं। बेटे ने भोजन किया और तुरंत अपने कमरे में गया। पत्नी ने अपने पति को आँख उठाकर भी नहीं देखा और चुपचाप बाहर आ गई और धीरे से माँको कमरे में ले आई। रोज की भांति बेटे तकिया के नीचे स वस्तु निकली और गौरसे निहारने लगा। देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू आ गये। फिर सीने लगाया हौले से दो तीन चुम्बन किये और पुन: तकिया के नीचे रखकर खेत पर काम करने चला गया माँ-बहू दोनों ने बेटे-पति का हरकत को देखा था। देटे के जाने के बाद बहू ने वह वस्तु लाकर सासू माँ के हाथ में थमा दी और कहा तो देख तो आपने बेटे का दुश्चरित्र। यद्यपि माँ सब सब

कुछ अपनी आँखों से देख चुकी थी और उस वस्तु को देखा तो निर्णय हो गया कि बहू सच कहती है।

तभी माँ ने बहू से कहा बेटा चिंता न कर। बूढ़ी है, जल्दी मर जायेगी। सच तो ये है कि सारे लोग भ्रांति में, संदेह में जिये जा रहे हैं। वह जो वस्तु है, जिसे माँ का लाड़ला तकिया के नीचे से उठाकर चुम्बन करता है, वह और कुछ नहीं आईना है, दर्पण है।

शंका का बारूद करती, प्रेम को नेस्तनाबूद–

दर्पण से अनजान लड़का यह सोचता है, कि यह हमारे भाई का फोटो है। चूँकि वह भाई को स्नेह करता है। अत: दर्पण में अपनी ही तस्वीर देखकर वह उसे अपना भाई समझने की भ्रांति में है। उसे ही चुम्बन करता है। बहु ने भी कभी आईना नहीं देखा। जब उसने पहली बार पति को इस प्रकार चुम्बन लेते देखा, तो शंका के साँप ने डस लिया। जब आईना देखा तो उसमें अपना ही चेहरा दिखा। उसने उसे ही पत्नि की प्रेमिका समझ लिया। जब बूढ़ी माँ ने दर्पण को देखा तो सहसा कह उठी – बेटा चिंता न कर, बूढ़ी है जल्दी मर जायेगी। शंका ने शांति छी ली। शंका ने आपस का प्रेम छीन लिया, शंका ने खुशियों का अपहरण कर लियां शंका ने सौभाग्य की रात दुर्भाग्य में बदल दी। शंका ने सुहागरात, मधुर मिलन की रात को आँसुओं की बरसात में बदल दिया। सारे घर में मातम सा छा गया।

और जब व्यवहारकि जीवन में शंका इतनी अनर्थकारी है, तो ध्यान रहे परमार्थिक जीवन में भी शंका उतनी ही विप्लव लाने वाली है। शंका के आते ही श्रद्धा का चमन सूखने लगता है, शंका के आते ही श्रद्धा का महल टूटने लगता है। शंका के आते ही परमात्मा प्रेम खो जाता है, शंका के आते ही श्रद्धा की सुहागरात छिन जाती है और दुर्भाग्य से मिलन हो जाता है इसलिए श्रद्धा की सेज पर शंका मत करना। श्रद्धा की सेज पर ही परमात्मा का प्रेम बरसता है, परमात्मा से मिलन होता है। श्रद्धा कीक सेज पर ही परमात्मा का आलिंगन होता है। जहाँ श्रद्धा नहीं, वहाँ परमात्मा का दर्शन नहीं। जहाँ श्रद्धा नहीं, वहाँ परमात्मा की मधुर मुस्कान नहीं। श्रद्धा की सेज पर ही परमात्मा का अवतरण होता है, इसलिए परमात्मा के प्यार डूब ही जाना, परमात्मा के प्यार को हृदय से स्वीकार कर लेना, शंका को अपने पास फटकने ही मत देना। शंका से कभी निगाह ही मत मिलाना। श्रद्धा की नजर से परमात्मा रूप का रसपान कर लेना, लेकिन कभी श्रद्धा को शंका की नजर मत लगने देना।

यदि पति-पत्नि के बीच में शंका का कंस प्रवेश कर गया, तो महाभारत प्रांभ हो जाता है। यदि सास-बहू के बीच में शंका का जुआँ घुस गया तो सिर में खुजली पैदा हो जाती है। यदि पिता-पुत्र के बीच में शंका का मच्छर घुस गया तो मलेरिया पैदा हो जाता है। यदि माँ-बेटी के बीच शंका की बारुद आ गई तो अपसी प्रेम सलामत नहीं रहता। यदि दो मित्रों के आपसी प्रेम में शंका का खटमल घुस गया, तो मित्रता का खून चूस लेता है।

इसलिए ख्याल रहे – जीवन में कभी शंका का आलिंगन मत करना, शंका के संगीत पर नृत्य मत करना। शंका की मोहकता पर मोहित मत होना, शंका की कभी अगवानी मत करना। परन्तु जीवन में श्रद्धा का आयोजन जरूर करना, श्रद्धा के संगीत पर नृत्य जरूर करना, श्रद्धा की मोहकता पर मोहित जरूर होना, श्रद्धा की अवगनी जरूर करना। ऐसा करने से जीवन सुखद हो जायेगा, जीवन शांतिमय हो जायेगा, जीवन में शाश्वत् आनन्द का सूत्रपात होगा।

फिर आप शंकातु नहीं, श्रद्धातु कहलायेंगे। संदेही नहीं, श्रद्धेही कहलायेगें। शंकित्वी नहीं, कहलायेंगे। संदेही नहीं, श्रद्धेही कहलायेंगे। शंकित्वी नहीं, सम्यक्त्वी कहलायेंगे, बिल्कुल राम की तरह।

शंकित्वी या सम्यक्त्वी –

राम जी का लंका में जो रूख था, जो भाव था, जो विचार था, सम्रूक्त्वी का शंका मे वही रूख, वही भाव, वही विचार होता हे। राम जी लंका में प्रवेश भी नहीं करना चाहते थे, लंका में पैर भी नहीं रखना चाहते थे, लंका की भूमि का स्पर्श भी नहीं करना चाहते थे। लंका की ओर अपनी दृष्टि भी नहीं ले जाना चाहते थे, लंका से स्वयं को दूर ही रखना चाहते थे। एक सम्यग्दृष्टि, एक सम्यक्त्वी भी शंका में नहीं जाना चाहता। शंका में अपना पैर भी नहीं रखना चाहता। शंका कठोर भूमि का स्पर्श भी नहीं करना चाहता। शंका की ओर अपनी दृष्टि भी, अपना विचार भी नहीं ले जाता। सम्यक्त्वी सदैव अपने आप का शंका से दूर रखना चाहता है। शंका की परछाईं भी सम्यक्त्वी को नहीं सुहाती। राम जी को लका के मीठे फल भी न लुभा सके, लंका के भोज्य पदार्थ भी आकर्षित न कर सके। लंका के सुन्दर-सुन्दर परिधान भी चित्त को हरण न कर सके। लंका का सौन्दर्य भी राम की मन की सुन्दरता को स्पर्श न कर सका अर्थात् लका का सौन्दर्य भी राम के मन पर अपना जादू न बखेर सकां लंका के स्वर्ण महल भी राम के चित्त को हरण न कर के उसी प्रकार सम्यक्त्वी को शंका के फल कभी मिष्ठ नहीं लगते, क्योंकि उसने निशंकाता के मीठे फल

का आनन्द पा लिया है। सम्यक्त्वी को शंका के भेज्य पदार्थ भी नहीं लुभा पाते, क्योंकि सम्यक्त्वी को शंका के परिधान आकर्षित नहीं कर पाते। शंका का सौंदर्य कभी भी सच्चे सम्यग्दृष्टि को लुभी नहीं पाता, आकर्षित नहीं कर पाता। शंका सौन्दर्य सम्यक्त्वी को डिगा नहीं पाता, चित्त का स्पंदित नहीं कर पाता। सम्यक्त्वीसदैव निशंक होता है।

सच तो यह है कि सम्यक्त्वी वही होता है, जो निशंक होता है अर्थात् निशंक श्रद्धा ही वास्तवकि श्रद्धा है, निशंक मन ही समीचीन आस्था का परिचायक है। सम्यग्दर्शन का द्योतक है। जैसे राम जी लंका के प्रति उदासीन थे, सम्यक्त्वी शंका के प्रति उदासीन होते हैं। राम जी लंका में पहुँचकर, लंका को पाकर, लंका का आदर-सत्कार देखकर भी विचलित नहीं हुये। उसी प्रकार सम्यक्त्वी भी शंका को सामने पाकर, शंका के द्वार पर पहुँचकर, शंका के आदर-सत्कार सम्मान को पाकर भी चलायमान नहीं होात। राम के मन में जो भाव लंका वे प्रति घटित हुआ, सम्यक्त्वी के आचरण में वही भाव शंका के प्रति घटित होता है। राम के लिए लंका न रुच सकी, सम्यक्त्वी को शंका नहीं रुचती। राम लंका के प्रति उदास थे, सम्यक्त्वी शंका के प्रति उदास होता है।

माता-पिता का लाड़ और बालक का बिगाड़–

जिनागम में कहानी आती है। काश्मीर देश के विजयपुर नाक नगर में एक सम्राट हुआ, जिसका नाम था अरिमत। सम्राट बड़ा पराक्रमी, परापकारी, जिनेन्द्र भक्त तथा प्रजा वस्तल था।

सम्राट की कमलनयनी, गजगामिनी, सुन्दर नाम की पटरानी थी। सम्राट और साम्रज्ञी सुखपूर्वक अपने समय को बिताते थे। एक समय साम्राज्ञी ने रूप सौन्दर्य युक्त ललितांग नामक पुत्र का जन्म दिया। माता-पिता की खुशी का पार न था। उनका रागभाव पुत्र को प्राप्तकर चौगुना हो गया था। हृदय की समत्वृत्ति अपना विस्तार करने लगी। वह सौन्दर्य का धारक कोमल शिशु माता-पिता के आकर्षण और मन-बहलाव का केन्द्र था। ललितांग माता-पिता के असीम स्नेह को पाकर वृद्धिगत होने लगा। उसने विद्या अर्जन भी नहीं की, कुसंगति में पड़कर रात-दिन व्यसनों का ही सेवन करने लगा। पुत्र स्नेह के कारण माता-पिता ने उसका विराध भी नहीं किया, अपितु हँसकर उसे प्रसन्न करने के लिए प्यार ही करते रहे।

जैसे नीम के पत्तों से संसर्ग से पानी कडुवा हो जाता है, उसी प्रकार राजपुत्र ललितांग भी दुष्ट संगति से विवेकहीन बन गया।

यौवन धन सम्पतिः प्रभुत्व मविवेकता।
एकैकप्यनर्थाय किमु तत्र यत्र चतुष्टयम्।।

इस नीति के अनुसार वह सर्वत्र अशांति उत्पन्न करता था। वह किसी को गाली देता, किसी को बाल पकड़कर खींचता, किसी के ऊपर थूँकता, किसी को कान पकड़कर खींचता। कभी-कभी मनाविनोद के लिए एक व्यक्ति के सिर का पड़कर दूसरे के सिर से टकराता। कभी साथियों के साथ मिलनक किसी भी भद्र महिला की इज्जत-अवरू बरबाद कर देता, यानि नगर में चारों-ओर आतंक ही आतंक व्याप्त था।

नगर की वेश्याओं रात भर नृत्य कराता। राहगी को साथियों से पिटवाता और पेड़ से बाँधकर उल्टा लटका देता।

ललितांग बना अंजन –

नगर निवासी ललितांग से तंग आकर विचार करने लगे कि कब तक इस प्रकार के अत्याचारों को सहन किया जाये। कुछ चतुर नागरिक, सम्राट के पास पहुँचे और ललितांग के कारनामों का चिट्ठा सम्राट के सामने खोलकर रखा। राजन्! नगर में त्राहि-त्राहि मची हैं बहु-बेटियों की अस्मत लूटी जा रही है। अनेक लोगों की हड्डी-पसली तोड़ दी है। बहुतों को कोल्हू में पेल दिया है। प्रजा बहुत त्रस्त है, रात को सोना हराम है। हम लोग एक महीने से सो नहीं सके। कुँओं से स्त्रियाँ पानी भरने नहीं जा सकती। अतः अनेक लोग प्यासे ही मर रहे है। हे राजन् – रक्षा करें, रक्षा करें।

प्रजा की व्यथा सुनकर सम्राट को पीड़ा हुई। नगरवासियों से कहा – आप लोग जायें और आनन्दपूर्वक रहें। भय छोड़, शांति से रहो। प्रजा के चले जाने पर राजा ने प्रधान अमात्य और पट्ट महिषी को बुलाया। पुत्र ललितांग की सारी कहानी कह सुनाई। माता-पिता ने पुत्र को बुलाकर भी क्षत्रिय धर्म, वंशानुगत ध र्म की शिक्षा दी था कहा कि आज से मेरी कसम खाईये कि कुसंगति में नहीं जाऊँगा तथा जिनधर्म का पालन करूँगा।

जिस प्रकार नारियल के पेड़ को किसी लकड़ी के सहारे बाँध देने पर सीधा हो जाता है, पर पीछे फिर टेड़ा हो जाता है तथा कुत्ते की पूँछ को थोड़ी देरे के लिए भले ही सीधा कर लिया जाये, किन्तु थोड़े ही समय में फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। उसी प्रकार कुमार ललितांग भी जब तक सम्राट के पास रहा तो ठीक रहा, फिर वहाँ से हटते ही साथियों को एकत्रित कर लूट-पाट करने लगा।

जब राजा को समाचार मिला तो अत्यधिक क्रोध आया ओर ललितांग को बुलाकर देश निकाला दे दिया। यदि कहीं भी मेरे राज्य में पाये गये तो प्राणदण्ड दे दिया जायेगा।

ललितांग पिता के आदेश को सुन अपनी माँ के पास गया और पिता को समझायें ऐसा कहने लगा। तब माँ ने उसे नीति की शिक्षा दी, जिससे ललितांग माँ को गलियाँ देता हुआ, क्रोधाभिभूत हो नेपाल देश की ओर चला गया।

चौर्यकला में अत्यन्त ख्याति प्राप्त थी। इसने चोरी में सफलता प्राप्त करने के लिए अंजनवटी विद्या को सिद्ध किया, जिससे अदृश्य होकर मनमानी वस्तुओं को चुरा लाता। अंजनवटी विद्या के कारण ही सर्व साधारण में यह अंजनचोर के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

स्वार्थ बनाम वेश्या –

नाना नगरों में भ्रमण करता हुआ ललितांग साथियों के साथ राजगृह नगर आया। इस नगरी की अप्रतिम सुन्दर अनंगसुन्दरी नामक वेश्या को देखकर मोहित हो गया। अनंगसुन्दरी के रूप पर बड़े-बड़े राजकुमार भी मुग्ध थे, वे उसे अपना सर्वस्व साँपने के लिए तैयार थे, लेकिन अंजनचोर की चार्य कला पर तथा उसके रूप पर वह अनंगसुन्दरी भी मोहित हो गई।

एक दिन राजगृह नगर के नृपति की पटरानी हाथी पर बैठकर सम्राट के साथ जलक्रीड़ा के लिए जा रही थी। उसके गले ज्योतिप्रभा नामक नीलमणियों का हार चमक रहा था। उसके गले में ज्योतिप्रभा नामक नीलमणियों का हार चमक रहा ाि। जब अनंगसुन्दी वेश्या की निगाह उस हार पर पड़ी तो पाने के लिए मचल उठी। मन में विचार किया कि मेरा पति अंजनचोर अपनी विद्या से हार को लाने में सर्वथा समर्थ है। जब वह आयेगा, मै। नाज नखरे के साथ कहूँगी कि यदि आपका मेरे ऊपर सच्चा प्रेम है, तो हार लाकर दीजिये। हार के बिना तो मुझे निष्प्राण ही जानो।

एक दिन अंजनचोर उसके भवन में आया। देखकर बोला – प्रिये, आज उदास क्यों? मेरे रहते हुए इस प्रकार की खिन्नता ठीक नहीं। अनंग सुन्दरी कुछ न बोली। अंजनचोर प्रेमाभिभूत हो आलिंगन करता हुआ बोला – प्रिये जब तुम उदास हो जाती हो, तो मुझे अपने जीवन से उदासी हो जाती है। जानती हो – मुझे मृत्यु प्रिय है, लेकिन तुम्हारी उदासी प्रिय नहीं। अनंगसुन्दी ने आँखों में आँचों डालकर उसके चेहरे को निहारा और कुटिल मुस्कान बिखेर दी। थोड़ी ही देर में पुनः गंभीर हो गई अंजनचोर ने कहा – प्रिये जो भी बात हो, बस मुस्करा

कर कह दो। अनंगसुन्दी ने कहा प्रिय जब तुम हमारे पास नहीं होते तो मुझे भ्झी तुम्हारे नि अपना जीवन नीरस ही लगता है। आज तक हमने आपसे कुछ भी नहीं माँगा, लेकिन आज.....। इतना कह अनंगसुन्दी चुप हो गई और पुनः चेहरे पर उदासीनता की भाव भंगिमा बिछा दी। अंजनचोर ने कहा – प्रिये! लेकिन आज.....। यानि क्या? इसके आगे भी निःसंकोच कहो?

अनंगसुन्दरी ने पुनः उसकी ओर अतिशय प्रेम प्रकअ करते हुये कहा – आज हमने महारानी के गले में ज्योतिप्रभा हार को जब से देखा है, तब से मुझे उसको अपने गले पहनकर तुम्हारे सामने आने की तीव्र लालसा जागी है।

अंचनचोर – बस इतनी सी बात! तुम चिंता न करो प्रिये – थोड़े ही समय में हम वह हार तुम्हारे गले में खुद पहिनायेंगे।

अनंग सुन्दरी –लेकिन वह हार तो मुझे अभी चाहिये। मैं थोड़े भी समय का इंतजार बर्दाश्त नहीं कर सकती। हार के बिना तो मेरे प्राण ही व्यर्थ है।

अंजनचोर – प्रिये, इतने उदास होने की आवश्यकता नहीं। थोड़ा इंतजार करो। सम्राट के महल में कड़ा पहरा रहता है, इसलिये मैं योजना बनाकर वह हार शीघ्र ही तुम्हारे गले में डालूँगा।

अनंग सुन्दरी – मुझे लगता है, तु हमें सच्चा प्यार नहीं करते। यदि करते होते तो थोड़े समय बाद लाने की बात ही नहीं कहते।

अंजनचोर ने कहा – प्रिये, ऐसा मत कहो। मैं कृष्णपक्ष की अष्टमी को वह हार तुम्हें दूँगा। कृष्णपक्ष में हमारी विद्या सफल कार्य करती है, अभी शुक्ल पक्ष में विद्या उतनी कार्यकारी नहीं है।

अनंग सुंदरी – जब तक हार लाकर नहीं देते, तब तक मेरा मुँह भी नहीं देखता।

अंजनचोर वेश्या में आसक्त था। विवश हो शुक्लपक्ष में ही हार चुराने के लिये तैयार हो गया। वेश्या स्वार्थ की भाषा ही जानती है, प्रेम की नहीं ओर जब प्रेम में स्वार्थ की पुट होती है, तो वह जहर का काम करता है, प्रेम को निष्प्राण कर देता है। अंजनचोर प्रेम में अंधा हो, हार चुराने चला। अदृश्य हो रानी के महल में प्रवेश कर लिया। रानी भी अके ली थी, बड़ी कुशलता से कंठ हार निकाल लिया। मुट्ठी में कैद था, पर उसकी तीव्र ज्योतिप्रभ्झा को कैद न कर सका। पहरेदारों ने चमकती हुई वस्तु को भागते हुये देखा, समझ गये अंचनचोर चोरी कर भाग रहा है। सैनिक तुरंत ही उसके पीछे लग गये। अंजन भी जान बचाने बेतहाशा भागने लगा। शरीर पर से पसीना उतने लगा, जिससे अंजन भी धीरे-धीरे दूटने लगा। जान बचाने के लिए उसने हार को एक तरफ

फैं दिया। अंजन छूट जाने से चोर दिखाई देने लगा, जिससे सैनिक भी पीछे पड़ गये। अंजने विचार किया – अब तो प्राण बचाना भी मुश्किल है। मोहांध होकर मैंने आने प्राण मुश्किल में डाल दिये। वेश्या का स्वार्थ प्रेम समझ में आ गया। मन ही मन विरक्ति का भाव जागा। उसे अपनी अज्ञानता पर बार-बार मछतावा आ रहा था।

आणं ताणं कछू न जाणं, सेठ वचन परमाणं –

भागते-भागते वह नगर से दूरसथ शमशान में पहुँचा। जलती हुई चितायें ही शमशान को रोशन कर रहीं थी। भागते हुये उसने वहाँ पर एक अद्‌भुत दृश्य देखा। एक आदमी पेड़ पर एक सींकों का झूला डाले है। नीचे धरती में आकाश की ओर मुख किये नुकीले शस्त्र, बरछे, भाले, तलवार आदि गड़े हुये हैं। वह आदमी अपने हाथ में भी एक चमचमाती तलवार लिये है और बार-बार उस सीकों के झूले पर चढ़ता है, उतरता है। अंजनचोर ने उस आदमी से पूछा-रीमान् जी आप यह क्या कर रहे हैं? उस आदमी ने कहा–मैं इस नगर के श्रेष्ठी जिन्दत्त का सेवक हूँ। वे जिनेन्द्र भगवान के उपासक हैं। उन्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हैं मुझ पर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे भी विद्या सिद्धि की यह विधि बतलायी है। उसी विधि के अनुसार मैंने जब आयोजन तो कर लिया, लेकिन 908 सीकों के झूले पर बैठकर मंत्र मढ़ते हुए एक-एक रस्सी काटने का साहस नहीं हो रहा। कहीं विद्या सिद्ध नहीं हुई, तो शस्त्र हमारा काम तमाम कर देंगे, इसी शंका का निवारण नहीं कर पा रहा।

अंजनचोर ने सुना–तो विचार करने लगा। सैनिकों के द्वारा पकड़े जाने पर फाँसी निश्चित है, अच्छा है यह विधि प्रयोग कर लूँ। यदि विद्या सिद्ध हो गई तो जिनदत्त श्रेष्ठी के दर्शन करूँगा और फिर मृत्यु के हाथों संसार में बचा भी कौन है।

अन्जनचोरे ने मंत्र पूछा – उस आदमी ने णमोकार मंत्र सिखा दिया, परंतु अंजनचोर को याद न हो सका। लेकिन इस बात की दृढ़ आस्था थी, कि सेठ के वचन निशंक हैं, शंका करने योग्य नहीं। वह तुरन्त झूले पर चढ़ गया और एक ही बापर में यह पढ़ते हुये, ''आणं ताणं कछू न जाणं, सेठ वचन परमाण'', सभी रस्सियों को काट दिया। निदत्त श्रेष्ठी के वचनों पर अटल श्रद्धा थी।

जैसे ही वह नीचे गिरने को हुआ कि आकशगमिनी विद्या ने उसे ऊपर उठा लिया। विद्या देवता ने उससे पूछा – ''तू क्या चाहता है?''

अंजनचोर ने कहा – मैं श्रेष्ठि जिनदत्त के दर्शन करना चाहता हूँ, क्योकि उसके प्रसाद से ही मुझे यह सिद्धि मिली है। वे जहाँ हों, वहीं पर ले चलो। श्रेष्ठि जिनदत्त उस समय सुमेरु पर्वत पर स्थित नन्दन और भद्रशाल वन में जिनेन्द्र देव की पूजा कर रहा था। अंजनचोर सुमेरु पर्वत स्थित इस चैत्यालय को देख आश्चर्य में पड़ गया। चैत्यालय में जब जगह स्फटिक मणियाँ लगी थीं। सोपान वज्र का बना था। दरवाजे में वेडूर्यमणी जड़ित थीं। वज्र के किवाड़ और सूर्यकान्तमणि की चौखट थी। पद्‌मराग मणियों के कलश, मरकत मणियों के तोरण और मोतियों की झालर थी। जिनबिम्ब मणिक्य और हीरे के थे।

अंजनचोर ने मंदिर मं जब प्रवेश किया, उस समय जिनदत्त अष्टद्रव्यों से भगवान जिनेन्द्र की पूजन कर रहा था। अंजन चोर जिनदत्त सेठ के चरणों में नमस्कार करने लगा।

जिनदत्त आश्चर्य मे पड़ गया। यह कौन है, जो जिनेन्द्र भगवान् के सामने हमें नमस्कार कर रहा है। जिनदत्त से रहा न गया। उन्होंने पूछ लिया – कौन हो तुम? अंजनचोर ने हाथ जोड़कर कहा – मै पापी, दुराचारी, दूसरों का सुख, चैन छीनने वाला अंजन चोर हूँ।

सेठ जी विचार करते हैं – ऐसे अधम, पापी, दुराचारी को आकाशगमिनी विद्या प्राप्त हो गई। पूछ ही लिया – आपको यह आकशगामिनी विद्या कैसे प्राप्त हो गई?

अंजनचोर – हे श्रेष्ठिवर्य! आपकी कृपा का ही फल है। जो जिनेन्द्र भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है, संसार में उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं मैंने कुसंगति में पड़ पाँचों पापों का सेवन किया, पर एक बार ही जिनेन्द्र भगवान् के चरणों का आश्रय ले, उनके वचनों का दृढ़ श्रद्धान रकने से मुझ पापी को भी यह श्रेष्ठ विद्या प्राप्त हो गयी। मैंने यह निश्चय कर लिया कि जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने वाला संसार से अवश्य पार हो जाता है। मैंने आपके वचनों पर विश्वास कर पंच नमस्कार मंत्र की आराधना की, जिससे विद्या की सिद्धि हुई जनत्त ने कहा – यहाँ किस प्रयोजन से आये हो?

अंजनचोर आपके प्रसाद से मुझ आकशगामिनी विद्या की प्राप्ति हुई अतः कृतज्ञ हो आपके दर्शनार्थ आया हूँ। अब आपसे मेरी यही प्रार्थना है, कि मुझ अब इस सिद्धि से भी कोई प्रयोजन नहीं है, आप तो हम आत्मसिद्धि का मार्ग बतायें।

जिनदत्त ने अंजन के वचन सुने तो आँखों में अन्तः प्रसन्नता के आँसू आ गये। धन्य हो अन्जन! कहाँ तो पाप की दुनियां के बेताज बादशाह थे और अब

परमात्मा की प्राप्ति को बेताव हो रहे हो। अंजन! पास मे ही हमारे गुरुवर चारण ऋद्धिधारी देवर्षि मुनिराज विराजमान हैं, उनकी चरण शरण को प्राप्त करो।

अंजन बना निंजन –

अंजनचोर पूरी श्रद्धाभाव से चरण ऋद्धिधारी मुनि के पास गया। आत्मालोचन करता हुआ दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की । केशलौंच किया और 28 मूलगुण का पालन करने गया। कुछ दिन तपस्या करने के उपरान्त चारण ऋद्धि प्राप्त हो गई कैलाश पर्वत पर द्वादश तपों को करते हुये घातिया कर्मों को नष्ट कर पश्चात् मूल, उत्तर प्रकृतियों को नाश कर परमपद ाके प्राप्त किया।

निशंक श्रद्धा ने अन्जन को निरन्जन बना दिया। श्रद्धा ने जुड़ना ही वास्तव में श्रद्धेय से जुड़ना है, श्रद्धा को पाना ही श्रद्धेश को पाना है, श्रद्धा में रमना है और वह श्रद्धा तुम्हारे अन्दर से जागेगी। श्रद्धा हमारी स्वयं की निधि है, स्वयं का खजाना है। जिसे अपनी निधि से साक्षत्कार हो गया, जिसे अपने बहुमूल्य, अमूल्य खजाने का पता चल गया – वह श्रद्धेय को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए श्रद्धा अमूल्य है और शंका अवमूल्यन है। हमें शंका के अवमूल्यन में नहीं, श्रद्धा की अमूल्यता में जीना है। अपनी निधि को उपलब्ध होने के लिए श्रद्धा भाव को जगाना है। अपनी निधि पर शंका नहीं, श्रद्धा करना है, विश्वास के फूल उगाना है।